माया की मार

श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतेः

माया की मार

परम पूज्य क्रतु दासजी महाराज कृत

संक्षिप्त नामों की सूची



भगवद गीताः भ. गी.

भागवतः भा.

भक्ति रसामृत सिन्धुः भ. र. सि.

हरि भक्ति विलासः ह. भ. वि.

श्वेताश्वतर उपनिषद्ः श्वे. उ.

ईशोपनिषदः ई.

चौतन्य चरितामृत आदिलीलाः चौ. च. आ

चौतन्य चरितामृत मध्यलीलाः चौ. च. म.

चौतन्य चरितामृत अन्त्यलीलाः चौ. च. अ.

आदि पुराणः आ. पु.

तैत्तिरीय उपनिषद्ः तै. उ

प्रेम विवर्तः प्रे.वि

ऐतरेय उपनिषद्ः ऐ.उ

ब्रह्म– संहिताः ब्र. सं

ब्रह्मनारदीय पुराणः ब्र. पु

कलि संतरण उपनिषद्ः क.स.उ

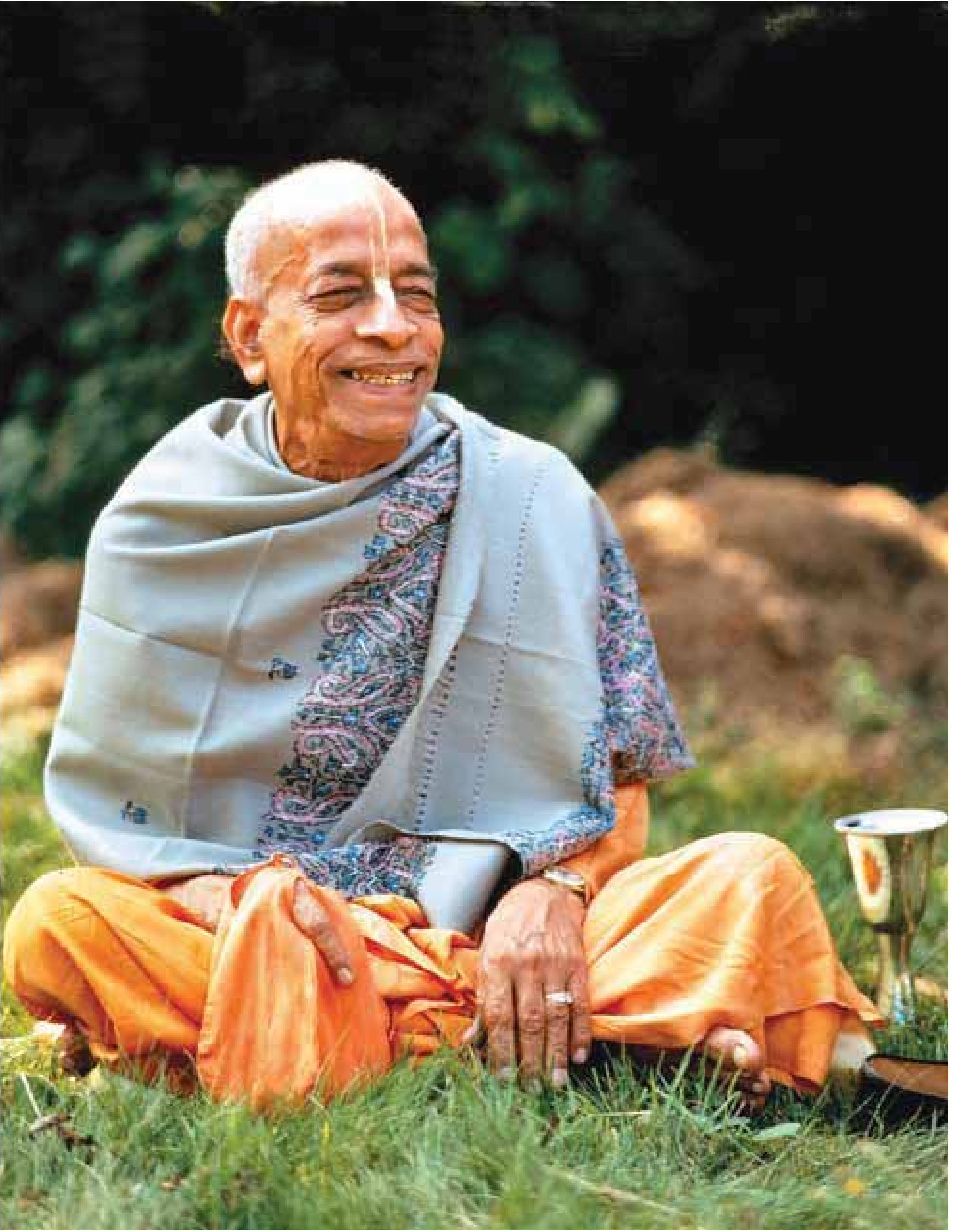
श्री दशमूलः श्री. द

मुंदक उपनिषदः मु.उ.

ब्रिहदारन्यक उपनिषदः ब्रि.उ

भक्ति–सन्दर्भः भ. स.

विषय-सूची



कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापक-आचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ



श्रीकृष्ण राजाधिराज हैं, केवल वही भगवान हैं और सारी भौतिक एवं आध्यात्मिक सृष्टि के एकमात्र राजा हैं। इसलिए राजा की तरह श्रीकृष्ण अपनी अनेक शक्तियों के माध्यम से सारी सृष्टि का संचालन करते हैं, स्वयं नहीं करते। (पृष्ठ १७)



भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नल कुबेर और मणिग्रीव का वृक्ष योनि से उद्धार (पृष्ठ ५१)



भगवद्भक्ति में रत महाराज भरत का हरिण में आसक्त होकर शनैः शनैः अपने दैनिक यम, नियम, उपासनादि से विलग हो जाना। (पृष्ठ ५३)



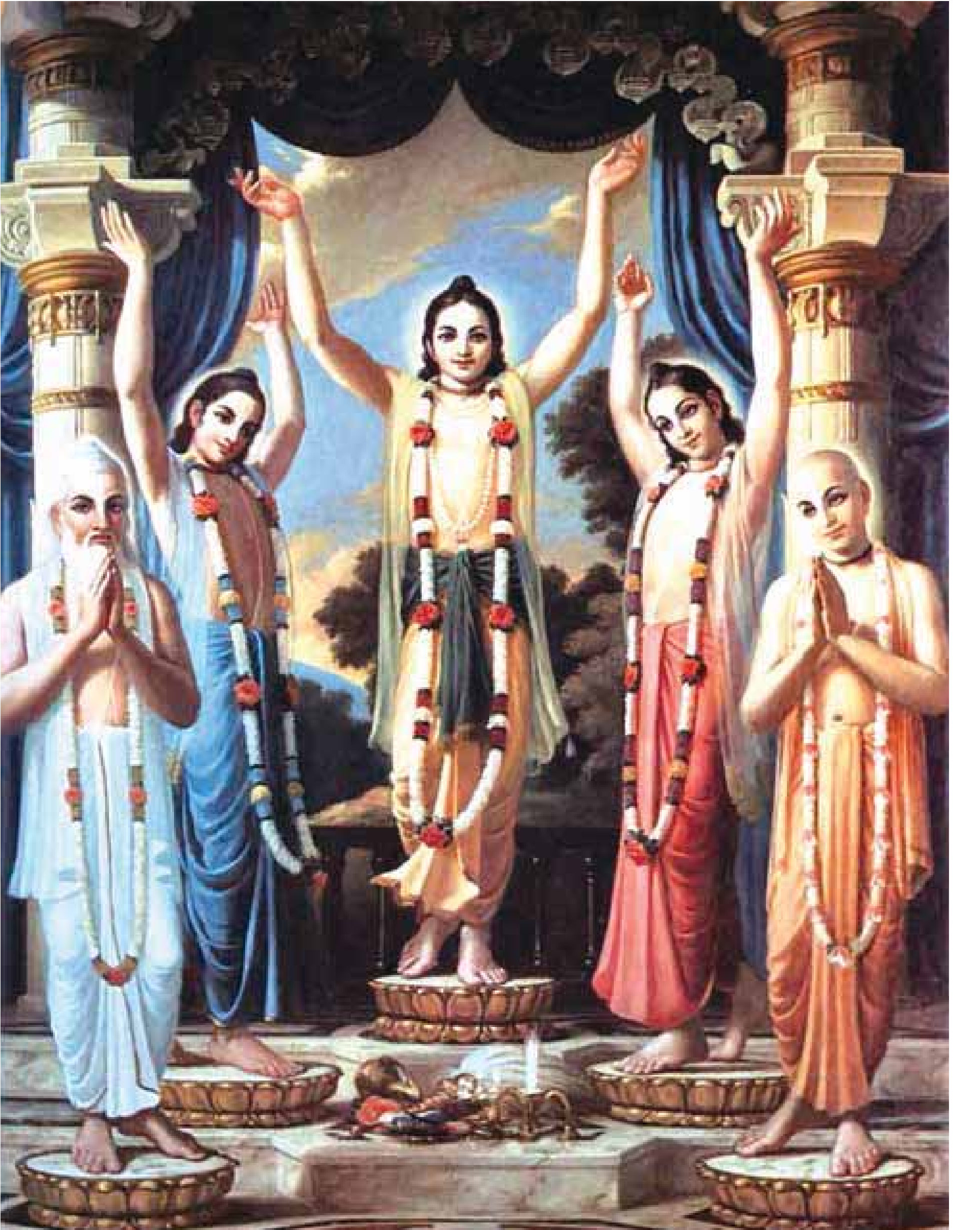
नारद तथा अंगिरा मुनियों का राजा चित्रकेतु को उपदेश देना तथा कुछ काल के लिए उसके मृत पुत्र को पुनः जीवित करके उससे ज्ञानपूर्ण बातचीत करवाना। (पृष्ठ ५८)



जमदग्नि मुनि की पत्नी रेणुका का गन्धर्वों के राजा चित्ररथ की सुन्दरता को देखकर आकर्षित होना। तद्‌पश्चात् उनको अपने पुत्र भगवान परशुराम द्वारा मृत्यु का मुख देखना। (पृष्ठ ६८)



मृत्यु के समय उसे ले जाने के लिए आये हुए भयंकर यमदूतों के भय से अजामिल का अपने पुत्र नारायण को पुकारना तथा उसी समय भगवन्नाम के उच्चारण के प्रभाव से विष्णुदूतों का आकर यमदूतों को उसे न ले जाने देना। (पृष्ठ ७१)



भगवान चैतन्य महाप्रभु अपने पार्षदों सहित।

प्रथम अध्याय

माया की परिभाषा

कोई भी राजा शक्ति के बिना राजा नहीं बन सकता। राजा को अपनी शक्ति के लिए सैन्य, हाथी, घोड़े, अस्त्र–शस्त्र आदि रखने पड़ते हैं। शासन के लिए नियम, विधान और जेल का प्रबंध रखना पड़ता है और अपनी प्रजा को सुखी बनाने के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, उत्सव, उद्यान, शिक्षा व्यवस्थाओं का प्रबंध करना होता है। श्री कृष्ण राजाधिराज हैं, केवल वही भगवान हैं और सारी भौतिक एवं आध्यात्मिक सृष्टि के एकमात्र राजा हैं। इसलिए उनका एकमात्र काम है राजा की तरह आनंद करना और प्रजा को आनंद करवाना। इसीलिए राजा की तरह श्रीकृष्ण अपनी अनेक शक्तियों के माध्यम से सारी सृष्टि का संचालन करते हैं, स्वयं नहीं करते।

कृष्ण की अनंत शक्तियाँ हैं।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।८।। 

अनुवादः भगवान या परमेश्वर के लिए कोई भी करने लायक कर्तव्य नहीं है अर्थात उन्हें कोई भी कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। भगवान के समान अथवा उनसे बढ़कर कोई नहीं है। उनकी अनंत दिव्य शक्तियाँ हैं जो उनमे स्वाभाविकःप से रहती हैं और उन्हें पूर्ण ज्ञान, बल और लीलाएँ प्रदान करती हैं।

(श्वे. उ. 6.8)

माया भगवान कृष्ण की शक्ति है। मुख्यतः माया दो प्रकार की है – योगमाया और महामाया। योगमाया श्रीकृष्ण की अंतरंगा शक्ति है जो आध्यात्मिक जगत की देखभाल करती है और महामाया कृष्ण की बहिरंगा शक्ति है जो भौतिक जगत का निर्माण, संचालन और संहार करती है। माया शब्द दो अक्षर से बना है "मा" और "या"। "मा" का अर्थ है "नहीं" और "या" का अर्थ है "यह". अर्थात माया का अर्थ हुआ "यह नहीं"। "माया" जो नहीं है उसका अनुभव कराती है, अर्थात जो सत्य नहीं है वह सत्य बताती है। ऐसी माया के बारे में राजा निमि नवयोगेन्द्र से जिज्ञासा करते हैं,

श्री राजोवाच

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहि

मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ।।१।।

राजा निमि ने कहाः अब हम भगवान विष्णु की उस माया के विषय में जानना चाहते हैं, जो बड़े बड़े योगियों को

भी मोह लेती है। हे प्रभु, कृपा करके हमें इस विषय मे बतलायें।

(भा. ११.३.१)

राजा निमि के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री अंतरिक्ष बताते हैं कि भौतिक जगत ही माया है। भौतिक जगत, भौतिक तत्व, भौतिक शरीर और भौतिक प्रकृति के तीन गुण, ये सब माया है। जब जीव इन्द्रिय तृप्ति करना चाहता है, भगवान उसको यह सुविधा प्रदान करने के लिए भौतिक इन्द्रियों और उनके विषयों की संरचना करते हैं। भगवान ही परमात्मा के रूप में भौतिक शरीरों में प्रवेश करके मन और बुद्धि को क्रियाशील बनाते हैं और तीनों गुणों तक पहुँचाते हैं।

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः।
एकधा दशधात्मानं विभजन्जुषते गुण

अनुवादः परमात्मा उत्पन्न किये गये प्राणियों के भौतिक शरीरों में प्रविष्ट होकर मन तथा इन्द्रियों को क्रियाशील बनाते हैं और इस तरह बद्धजीवों को इन्द्रिय–तृप्ति हेतु तीन गुणों तक पहुँचाते हैं।

(भा. 11.3.4)

इस श्लोक पर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका का सारांश इस प्रकार है, एक परमात्मा स्थूल भौतिक तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) में

प्रवेश करता है और भौतिक मन को क्रियाशील बनाकर बद्धजीवों के ऐन्द्रिय कर्मों को पाँच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा) में सूक्ष्मतः विभाजित कर देता है और इसके बाद पाँच स्थूल कर्मेन्द्रियों (हाथ, पाँव, वाणी, जननांग तथा गुदा) में विभाजित कर देता है। चूँकि मुक्तात्माओं में भगवान की सेवा करने की प्रबल प्रवृत्ति पाई जाती है, अतएव वे अच्छाई–बुराई के द्वैत के प्रति आकर्षित नहीं होते। वे उन भगवान की भक्ति तथा प्रेम से अपना आनन्द प्राप्त करते हैं, जो भौतिक सृष्टि से परे अपनी दिव्य लीलाओं का नित्य आस्वादन करते रहते हैं।"

गुणैर्गुणान्स भुञ्जान आत्मप्रघोतितैः प्रभुः।
मन्यमान इदं सृष्टात्मानमिह सज्जते।।

अनुवादः भौतिक देह का स्वामी व्यष्टि जीव परमात्मा द्वारा सक्रिय की गई अपनी भौतिक इन्द्रियों द्वारा प्रकृति के तीन गुणों द्वारा बनाये गये इन्द्रियविषयों का भोग करने का प्रयास करता है। इस तरह वह उत्पन्न भौतिक शरीर को अजन्मे नित्य आत्मा के रूप में मानने के कारण भगवान की माया में फँस जाता है।

(भा. 11.3.5)

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी।
त्रिवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।

अनुवादः मैं अभी भगवान की मोहिनी–शक्ति माया का वर्णन कर चुका हूँ। यह तीन गुणों वाली माया भगवान द्वारा

ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार के लिए शक्तिप्रदत्त है। अब तुम और क्या सुनने के इच्छुक हो?

(भा.11.3.16)

प्रभुपाद उपरोक्त श्लोक के तात्पर्य में लिखते हैं: ''भगवान की बहिरंगा शक्ति माया द्वारा भौतिक जगत की उत्पत्ति, पालन तथा संहार होता है। यह माया लाल, श्वेत तथा काला– इन तीन रंगों वाली है। लाल रंग में प्रकृति की सृष्टि होती है, श्वेत में उसका पालन होता है और काले में संहार हो जाता है। महत तत्व इसी माया से उत्पन्न होता है और महत तत्व से ही तीन प्रकार के मिथ्या अहंकार जन्म लेते हैं– सतोगुणी रजोगुणी एवं तमोगुणी मिथ्या अहंकार। प्रलय के समय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश– ये पाँच महत तत्व उसी तमोगुणी अहंकार में मिल जाते हैं जिससे ये प्रारंभ में उत्पन्न हुए थे। इसी तरह दसों इन्द्रियाँ तथा मन रजोगुणी मिथ्या अहंकार में मिल जाते हैं और मन देवताओं समेत सतोगुणी मिथ्या अहंकार में मिल जाता है, जो पुनः महत तत्व में और यह महत तत्व पुनः प्रकृति या अव्यक्त प्रधान में शरण लेता है। (भा. 11.3.16 तात्पर्य)

श्रीप्रबुद्ध उवाच

कर्माण्यारभमाणानां दु:खहत्यै सुखाय च।
पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम।। १८।।

अनुवाद: श्री प्रबुद्ध ने कहा, ''अतः मानव समाज में नर तथा

नारी की भूमिकाएँ स्वीकार करते हुए बद्धजीव संभोगरत होते हैं। इस तरह वे अपने दुख के निवारणार्थ निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं और अपने आनंद को असीम बनाना चाहते हैं। किन्तु यह देखना चाहिए कि उन्हें सदैव इसका बिल्कुल उलटा परिणाम मिलता है।'' दूसरे शब्दों में, उनका सुख अनिरंतर है, अतः समाप्त हो जाता है और ज्यों–ज्यों वे बूढ़े होते जाते हैं, उनकी भौतिक सुविधाएँ घटती तथा भौतिक असुविधाएँ बढ़ती जाती हैं।

(भा. 11.3.18)

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृयुना।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः।।

अनुवादः सम्पत्ति दुख का अविच्छिन्न स्त्रोत है, इसे अर्जित करना सर्वाधिक कठिन है और एक तरह से यह आत्मा के लिए मृत्यु स्वरूप है। भला अपनी सम्पत्ति से किसी को कौन–सा लाभ मिलता है? इसी तरह कोई अपने तथाकथित घर, सन्तान, सम्बन्धीगण तथा घरेलू पशुओं से स्थायी सुख कैसे प्राप्त कर सकता है, जो उसकी कठिन कमाई से पालित–पोषित होते हैं?

(भा. 11.3.19)

मनुष्य स्वयं की पहचान शरीर के साथ करता है, इसलिए वह शरीर से सम्बंधित कुटुम्ब के प्रति आसक्त रहता है और उनके लिए आवश्यकता से भी ज्यादा धन कमाने में दिन रात परिश्रम करता रहता है। संपत्ति की वृद्धि करने

में ही मनुष्य अपना अमूल्य मनुष्य जीवन नष्ट करता है। परन्तु उपर्युक्त श्लोक में बताया गया है कि संपत्ति बड़े कठोर परिश्रम से प्राप्त होती है और प्राप्त होने के बाद भी इससे स्थायी सुख नहीं मिलता। ऐसी संपत्ति से क्या लाभ होगा, जिसके कारण आत्मा मनुष्य जीवन गवां बैठता है, और अपने उद्धार के लिए कोई प्रयास नहीं करता। दिन रात माया की मार खाकर भी यदि यह नहीं समझ पाता कि मनुष्य जीवन केवल कृष्ण–भक्ति के लिए है, और अपने उद्धार के लिए प्रयत्न नहीं करता, तो यह आत्मा के लिए मृत्यु स्वरुप है। कोई चाहे कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो, या भौतिक संसार में सर्वोच्च उपाधि ही क्यों न प्राप्त की हो परन्तु यदि उसने अपनी बुद्धि का उपयोग कृष्ण भक्ति के लिए न किया हो, तो उसको श्रीमद् भागवतम् में पागल कहा गया है।

एवं लोकं परम्विधान्नकर्श्वरं कर्मनिर्मितम।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम।।२०।।

अनुवादः मनुष्य को स्वर्गलोक में भी ऐसा स्थायी सुख नहीं मिल सकता, जिसे वह अनुष्ठानों तथा यज्ञों से अगले जीवन में प्राप्त कर सकता है। यहाँ तक कि भौतिक स्वर्ग में भी जीव अपने बराबर वालों की होड़ से तथा अपने से बड़ों की ईर्ष्या से विचलित रहता है। चूंकि पुण्यकर्मों की समाप्ति के साथ ही स्वर्ग का निवास भी समाप्त हो जाता है, अतएव स्वर्ग के देवतागण अपने स्वर्गिक जीवन के

विनाश की आशंका से भयभीत रहते हैं। इस तरह उनकी दशा उन राजाओं की सी रहती है, जो सामान्य जनता द्वारा ईर्ष्यावश प्रशंसित होते हैं, किन्तु शत्रु राजाओं द्वारा निरन्तर सताये जाते हैं, जिससे उन्हें कभी भी वास्तविक सुख नहीं मिल पाता है।

भा. 11.3.20)

श्रीप्रबुद्ध उपरोक्त इन तीन श्लोकों में माया के स्वरुप का वर्णन कर रहे हैं। भागवत के उपरोक्त 11.3.18 श्लोक में स्त्री और पुरुष के मध्य मैथुन आकर्षण माया है। इसके बाद के 11.3.19 श्लोक में धन, संपत्ति, घर, बच्चे, सम्बन्धी पालतू जानवर आदि भी काल्पनिक सुख देते हैं, इसको भी माया का स्वरुप बताया है। सके बाद के श्लोक 11.3.20 में बताया गया है कि पृथ्वी पर स्त्री–पुरुष का मैथुन सुख और धन से खरीदे हुए सुख से इन्द्रियतृप्ति न होने पर जीव स्वर्ग जाना चाहते हैं, जहां लम्बे काल तक अप्सराओं (जैसे उर्वशी और रम्भा) का साथ और सोमरस (मदिरा), धन (ऐश्वर्य), नंदन–कानन जैसे उ।ानों का इन्द्रियों से भोग अर्थात इन्द्रिय–तृप्ति करना चाहते हैं। ये सब माया है क्योंकि *दुष्पूरेणानलेन च (भ. गी. 3.39)* । अग्नि में जितना भी इंधन डाले अग्नि ज्यादा बढती है, कभी तृप्त नहीं होती। इसी प्रकार इन्द्रियाँ अधिक से अधिक विषय सुख देने पर भी कभी तृप्त नहीं होतीं। इस प्रकार जीव अनादिकाल से स्त्री और धन के मायाजाल में फंसा रहता है और माया की मार खाता रहता है।

जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर 'नित्य–दास'।
कृष्णेर 'तटस्था–शक्ति' भेदाभेद प्रकाश।।१०८।।

कृष्ण का सनातन सेवक होना जीव की वैधानिक स्थिति है, क्योंकि जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति है, और वह भगवान से एक ही समय अभिन्न और भिन्न है।

(चै. च. 2.20.108)

जीव अणु है और तटस्था शक्ति होने के कारण कभी योगमाया और कभी महामाया के प्रति आकर्षित होता है। स्वभाव से जीव श्रीकृष्ण का ही नित्य दास है, तो यह योगमाया और महामाया क्या हैं? यह समझना आवश्यक है।

योगमाया

वास्तव में भगवान की एक ही शक्ति है। जैसे बिजलीवाला बिजली से ठंडी या गर्मी पैदा कर सकता है वैसे ही श्रीकृष्ण जब अपनी सत्ता में रहकर कार्य करते हैं तो उसे योगमाया कहा जाता है। अर्थात, योगमाया भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य शक्ति है जिससे वह आध्यात्मिक जगत को परिचालित करती है। यह भगवान की अंतरंगा स्वरुप शक्ति है। योगमाया से ही भगवान कृष्ण अपनी लीलाएँ करते हैं और जब भौतिक जगत में अवतरित होते हैं तब भी इसी माया के द्वारा अपना हर कार्य संपादित करते हैं।

महामाया

महामाया श्रीकृष्ण की बहिरंगा शक्ति है। यह जीव को अन्धकार व अज्ञानता में डालती है। जीव को अपना स्वरुपज्ञान भुलाकर "मैं यह भौतिक शरीर हूँ" ऐसा समझाती है और देह और देह के संबंधियों के साथ "अहम् ममत्व" कराती है, जो सब झूठ है।

महामाया के दो प्रकार –१. जीव माया २. गुण माया

१. जीव माया: जीव माया भी दो प्रकार की है – (क) आवरणात्मिका और (ख) विक्षेपात्मिका (प्रक्षेपात्मिका)

(क) आवरणात्मिका: यह माया जीव को अपना स्वरुप ज्ञान भुलाती है जो आध्यात्मिक (सच्चिदानंद) आत्मा है। अर्थात, "मैं आत्मा हूँ" यह भुलाकर "मैं शरीर हूँ" ऐसे अज्ञानरुपी अन्धकार और अवि।ा में डालती है। "मैं शरीर ही हूँ" ऐसा जताती है। आत्मा भगवान श्रीकृष्ण का ही अंश है, इसलिए भगवान श्रीकृष्ण की ही सेवा करना उसका परम धर्म है, आवरणात्मिका जीवमाया इस सत्य को भुला देती है।

(ख) विक्षेपात्मिका: यह शक्ति जीव को अज्ञानता में धकेलती है कि 'मैं यह भौतिक शरीर ही हूँ, और भौतिक शरीर के सम्बन्धी मेरे ही हैं, इसलिए भौतिक इन्द्रियों का भौतिक विषय भोगना यही मेरा लक्ष्य है'। जबकि वास्तविक लक्ष्य है इन्द्रियों को इन्द्रियों

के स्वामी श्रीकृष्ण की सेवा में लगाना। विक्षेप यह है कि मन इन्द्रियों को श्रीकृष्ण की सेवा में लगाने के बजाय इनसे भौतिक भोग भोगना चाहता है।

गुणमायाः

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं –
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपधन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अनुवादः– प्रकृति के तीन गुणों वाली इस मेरी दैवी शक्ति को पार कर पाना कठिन है, किन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे सरलता से इसे पार कर जाते हैं। (भ.गी. 7.14)

माया त्रिगुणमयी है – सतोगुण, रजोगुण और तमो गुण। इन तीन गुणों का वर्णन भगवान ने भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय में किया है। यही तीन गुण जीव को उसके देह से बद्ध करते हैं। तम शब्द का अर्थ है अन्धकार। तमोगुण अंधकारमय है। अन्धकार वस्तु के यथार्थ स्वरुप का ज्ञान नहीं होने देता, उसे आवृत करके रखता है। इसी प्रकार तमोगुण ज्ञानशक्ति को ढक कर रखता है और सही वस्तु की दूसरे रूप में प्रतीति कराता है, या प्रमाद, निद्रा, आलस्य और अविवेक को जन्म देकर दुख देता है। रजोगुण विषयों में आसक्ति और कर्मो में प्रवृत्ति उत्पन्न करता है और मन को चंचल करता रहता है। क्रोध और दंभ आदि इसके परिणाम हैं। इसका फल सुख– दुःख का मिश्रण होता है। सत्वगुण ज्ञान और सुख का कारण है।

सत्वगुण जनित ज्ञान भौतिक ज्ञान है, आध्यात्मिक नहीं। सत्वगुण जनित सुख भी भौतिक और क्षणिक हैं, वास्तविक और स्थायी सुख नहीं है। इस प्रकार ये तीनों गुण जीव को संसार बंधन में डालते हैं और माया की मार मारते हैं।

गुणमाया भौतिक जगत को उत्पन्न करती है, इसलिए भौतिक जगत ही माया है। भौतिक जगत के तत्व हैं – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार, पाँच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, वाणी, मलद्वार, मूत्रद्वार), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा) और पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध)। इनसे जीव भौतिक इन्द्रियतृप्ति करके भौतिक सुखों को भोगता है, और श्रीकृष्ण सम्बन्धी आध्यात्मिक सुख को भूल जाता है। यह गुणमाया है जिससे जीव दुखी होता है।

भौतिक जगत का प्रलय होता है। प्रलय होने तक जीवात्मा दुखों को भोगता रहता है और जब सृष्टि की रचना होती है तो पुनः अपने– अपने कर्म के अनुसार जन्म लेता है और सुख–दुःख का फल भोगता है। यह सब माया का कार्य है।

माया की परिभाषा हमें श्रीमद् भागवतम् में मिलती है कि भगवान श्रीकृष्ण से हम जो भी अलग करके देखें या अलग करें वह माया है।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तदविघादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः।।३४।।

अनुवादः हे ब्रह्मा! जो भी सारयुक्त प्रतीत होता है, यदि वह मुझसे सम्बंधित नहीं हैं, तो उसमे कोई वास्तविकता नहीं है। इसे मेरी माया जानो, इसे ऐसा प्रतिबिम्ब मानो जो अन्धकार में प्रकट होता है।

(भा. २.९.३४)

अर्थात, माया की प्रतीति श्रीकृष्ण में नहीं होती। माया की प्रतीति जहाँ होती है वहाँ कृष्ण नहीं हैं, और जहाँ कृष्ण की प्रतीति होती है वहाँ माया नहीं है। अर्थात माया की प्रतीति श्रीकृष्ण के बाहर होती है पर कृष्ण के आश्रय के बिना नहीं। ठीक उसी तरह जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य से बाहर जलाशय पर पड़ता है, पर सूर्य के आश्रय के बिना नहीं। सूर्य का जलाशय में प्रतिबिम्ब जिस प्रकार सूर्य पर आश्रित होते हुए भी सूर्य को स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार माया श्रीकृष्ण की शक्ति होते हुए भी श्रीकृष्ण को स्पर्श नहीं कर सकती।

सब कुछ श्रीकृष्ण से उत्पन्न हुआ है इसलिए सबकुछ कृष्ण का है, कृष्ण से सम्बंधित है और कृष्ण के भोग के लिए है। जैसे कि श्रील प्रभुपाद उदाहरण देते हैं, "जो भी हम पैदा करें, चाहे वह घर हो, गाड़ी हो या पैसा, वह सब हमारे सुख के लिए है। ठीक इसी प्रकार जो भी कृष्ण ने पैदा किया है वह सब कृष्ण के सुख के लिए ही है।

ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।

अनुवादः इस ब्रह्माण्ड के भीतर की प्रत्येक जड़ अथवा चेतन वस्तु भगवान द्वारा नियंत्रित है और उन्हीं की संपत्ति है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि अपने लिए केवल उन्हीं वस्तुओं को स्वीकार करे जो उसके लिए आवश्यक है और जो उसके भाग के:प में नियत कर दी गयी है। मनुष्य को यह भलीभांति जानते हुए कि अन्य वस्तुएँ उसकी नहीं हैं, उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहिए। (ई. 1)

इसलिए यदि हम कृष्ण से कुछ भी अलग करके अपनी इन्द्रिय तृप्ति करें तो यह माया है। कृष्ण को भूल जाना और कृष्ण की शरण नहीं स्वीकारना–यह माया है। श्रील रूप गोस्वामी भक्ति रसामृत सिन्धु 1.2.126 में कहते है "हरिसम्बन्धिवस्तुनः", जो चीज श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में है वह आध्यात्मिक है और माया नहीं है। इसलिए हमें सभी कार्य श्रीकृष्ण से जोड़ कर करने चाहिए।

महामाया श्रीकृष्ण की बहिरंगा शक्ति होने के कारण समुद्र के इस पार रहती है, और भगवान श्रीकृष्ण से विमुख जीवों को सत्य भुलाकर भौतिक शरीर में आसक्ति पैदा करती है। अर्थात जीव तभी तुष्ट–पुष्ट आनंदित रह सकता है जब तक वह सदा के लिए श्रीकृष्ण का दासत्व स्वीकारता रहे।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति।।६।।

अनुवादः सम्पूर्ण मानवता के लिए परम वृत्ति (धर्म) वही है, जिसके द्वारा सारे मनुष्य दिव्य भगवान की दिव्य प्रेमा–भक्ति प्राप्त कर सकें। ऐसी भक्ति अकारण तथा अखण्ड होनी चाहिए जिससे आत्मा पूर्ण रूप से तुष्ट हो सके।

(भा. 1.2.6)

श्रीकृष्ण की अहैतुकी और अविरत सेवा करना ही आत्मा की स्वाभाविक स्थिति है। आत्मा अपने अंशी श्रीकृष्ण से जुड़ा रहे और उनकी सेवा करे, तो अंश– आत्मा सुखी और अंशी–कृष्ण सुखी, दोनों सुखी। जैसे हाथ शरीर का अंश है। इसीलिए हाथ तभी सुखी रह सकता है, जब हाथ के पास जो लड्डू है उससे शरीर की सेवा करे। पुत्र माता–पिता का अंश है तो पुत्र माता–पिता की सेवा करे तो दोनों सुखी। भगवान श्रीकृष्ण ने इस उद्देश्य से जीवों की सृष्टि की जिससे कि दोनों सुखी रहें।

रसो वै सः ह्येवायं लब्ध्वान्नदी भवति।

अनुवादः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान दिव्य रसों के आगार हैं या साक्षात् रस हैं। उन्हें प्राप्त करके ही आत्मा वास्तविक रूप में, दिव्य रूप से आनंदित बनता है।

(तै. उ. २.७.१)

कृष्ण आनंद हैं और हम उनकी सेवा करके आनन्दित रह सकते हैं। पर, जीव जब कृष्ण से विमुख होता है तो माया उनको भौतिक संसार रूपी जेल में भेजती है और जीव को दुःख देती है ताकि वह सुधर जाए। सुधार है– जीव का पुनः कृष्ण– उन्मुख होना। परन्तु इस भौतिक संसार रूपी जेल में आकर जीव दुखी होता हैं, जिससे कृष्ण भी दुखी होते हैं। जब बच्चा कोई गलत कार्य करता है तो माता उसको दण्ड देती है, परन्तु दण्ड देकर वह प्रसन्न नहीं होतीं। वह चाहती हैं कि दंड से बच्चे में सुधार आ जाये, और वह एक अच्छा जीवन जीए। जीव जब कृष्ण से विमुख होकर, श्रीकृष्ण की स्वाभाविक वास्तविक सेवा छोड़ देता है तो वह माया के चंगुल में फँस जाता है।

कृष्णबहिर्मुख हइया भोग– वाञ्छा करे।
निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे।।

अनुवादः अनादिकाल से कृष्ण–बहिर्मुख जीव नाना प्रकार से सांसारिक भोगों की अभिलाषा करता आ रहा है। यह देख कर उसके समीप ही रहनेवाली माया झपटकर उसे पकड़ लेती है।

(प्रे. वि. २)

माया नहीं चाहती कि जीव को अपनी मार से मारे, लेकिन परवश होकर जीव को उसकी स्वाभाविक स्थिति, जो कि कृष्ण की सेवा है, में लाने के लिए उसको मार मारती है। वह अपनी मार से जीव का सुधार करती है। सुधार

है– जीव का पुनः अपनी स्वाभाविक वास्तविक स्थिति, जो कृष्ण की सेवा है, में स्थित हो जाना।

कृष्ण भुलि' सेइ जीव अनादि–बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार–दुःख ।।

जीव अनंत काल से कृष्ण को भूलकर बाह्य रूप द्वारा आकृष्ट होता रहता है, अतः माया उसे इस भौतिक संसार में सभी प्रकार के दुःख देती रहती है।

(चै. च. म. 20.117)

श्रीकृष्ण से अभिन्न होकर भी जीव नित्य–भिन्न है। जैसे अग्नि से अनेक स्फुलिंग निकलते हैं, वैसे ही भगवान कृष्ण से जीव की उत्पत्ति हुई है। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से अभिन्न होकर भी नित्य–भिन्न हैं, उसी प्रकार आत्मा कृष्ण से अभिन्न होकर भी नित्य–भिन्न है। कृष्ण और जीव में नित्य भेद यह है कि भगवान श्रीकृष्ण मायाशक्ति या प्रकृति के स्वामी हैं और मायाशक्ति उनकी सेविका हैं। जीव मुक्त अवस्था में भी अपने स्वभाव के अनुसार माया के अधीन हो सकता है।

तस्य वा पुरुषस्य द्वे एवं स्थाने भवत
इदं च परलोकस्थानं च संध्यं तृतीयं स्वप्न स्थानं
तस्मिन् संध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने
पश्यतीदं च परलोक स्थानं च।

(ब्रि. उ. ४.३.९ 4.3.9)

अनुवादः जीव पुरुष के दो स्थान हैं – जड़ जगत और अनुसंधेय चित जगत। जीव इन दोनों के मध्य संध्यस्थान रूप तृतीय स्वप्न–स्थान में स्थित है। वह इस संध्य स्थान में स्थित होकर जड़ जगत और चित जगत दोनों स्थानों को देखता है।

'जैव धर्म' में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर लिखते हैं, ''जीव शुद्ध चित पदार्थ है, श्रीकृष्ण का अंश है, परन्तु जब जीवात्मा कृष्ण विमुख और माया उन्मुख हो जाता है तो उसे संसार रुपी दुर्गति का सामना करना पड़ता है। जड़ जगत में जब पक्षी अंडा देता है, तो अंडा पक्षी से अलग हो जाता है, परन्तु चित जगत में ऐसा नहीं होता। जीव कृष्ण से भिन्न होकर भी अभिन्न है और अभिन्न होकर भी नित्य–भिन्न है। जीव मूलतः कृष्ण का दास है। "जीवेर स्वरुप होई कृष्णेर नित्य दास"। अतः कृष्ण की सेवा ही जीव का स्वरुप धर्म है। जो भी आत्मा इस स्वरूपधर्म से विमुख होकर निज सुख की कामना करता है, माया उसे सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के बंधन से बाँध देती है, और कर्म बंधन के अधीन करके कभी स्वर्ग तो कभी नरक में दुःख देती रहती है''।

माया की मार खा खाकर जीव की बड़ी दुर्गति होती है और वह पुनः पुनः जन्म–मृत्यु की पीड़ा से गुजरता रहता है। स्वर्ग और नरक में जीव का आवागमन लगा रहता है, परन्तु इस भौतिक संसार में कहीं भी उसको स्थायी

आनंद प्राप्त नहीं हो पाता। जो जीव भौतिक जगत में इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं, उनको माया अपने इशारों पर नचाती रहती है परन्तु जो जीव कृष्ण भक्ति के अनुशीलन में लगे रहते हैं, वह चित–शक्ति से बल प्राप्त करते रहते हैं और माया की मार से बच सकते हैं।

भगवान कृष्ण का अंश होने के कारण अल्पमात्रा में कृष्ण के लक्षण जीव में भी हैं। इसलिए जीव स्वतंत्रता चाहता है। भगवान कृष्ण ने जीव को स्वतंत्रता दी है, परन्तु जो इस स्वतंत्रता का सही उपयोग करता है, वह कृष्ण उन्मुख हो जाता है और जो इस स्वतंत्रता का गलत उपयोग करता है, वह कृष्ण विमुख हो जाता है। इसी विमुखता के कारण जीव में मिथ्या अहंकार आता है और वह माया का भोग करने की कामना करने लगता है। कृष्ण द्वारा प्रदान की गयी स्वतंत्रता का सही और गलत उपयोग ही हमारे मुक्त और बद्ध होने का एकमात्र कारण है। अनादि काल से जीव कृष्ण को भूलता रहा इसलिए माया उसको जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि रूपी संसार का दुःख देती है, ताकि जीव सुधर जाए।

माया अचेतन और अन्धकारमयी है। इसका भगवान श्रीकृष्ण से उसी प्रकार सम्बन्ध हैं, जिस प्रकार धुएं का अग्नि से है। यह जीव को अपनी मार मारती है और उसे भौतिक संसार में फाँस लेती है। इसलिए उसे अपरा शक्ति भी कहते हैं। माया श्रीकृष्ण की शक्ति इसलिए भी है

क्योंकि वह कृष्ण के बाहर होते हुए भी उनसे नियंत्रित है। सृष्टि के पूर्व माया के सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ये तीनो गुण अपनी सुसुप्त अवस्था में रहते हैं। भगवान सृष्टि करने की इच्छा करते हैं तब प्रकृति अर्थात दुर्गा देवी पर दृष्टिपात करते हैं। "स ऐक्षत" अर्थात, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया।

(ऐ. उ.१.१.१)।

भगवान श्रीकृष्ण दुर्गा में शक्ति का संचार करते हैं, जिससे प्रकृति के तीनों गुणों की सुसुप्त अवस्था भंग होती है, और भौतिक सृष्टि का कार्य आरंभ होता है। जड़ प्रकृति, जिसे प्रधान प्रकृति कहते हैं, स्वयं सृष्टि कार्य को करने में असमर्थ है।

जगत्कारण नहे प्रकृति जड़रूपा।
शक्ति सञ्चारिया तारे कृष्ण करे कृपा।।५६।।

अनुवादः चूँकि प्रकृति जड़ तथा निष्क्रिय है, अतएव यह प्रकृति वास्तव में भौतिक जगत का कारण नहीं हो सकती। लेकिन भगवान कृष्ण जड़ निष्क्रिय भौतिक प्रकृति में अपनी शक्ति संचारित करके अपनी कृपा प्रदर्शित करते हैं।

(चौ. च. 1.5.59)

श्रील प्रभुपाद चैतन्य चरितामृत (1.5.51) के भावार्थ में लिखते हैं, "जिस प्रकार घट का मुख्य निमित्त कारण कुम्भकार है और गौण निमित्त कारण उसका चक्र, दंड

आदि हैं, इसी प्रकार विश्व का मुख्य निमित्त कारण हैं कृष्ण और गौण निमित्त कारण है माया। इस प्रकार, यद्यपि सृष्टि माया के तीनों गुणों का परिणाम है और माया उसका उपादान कारण है, मुख्य कारण नहीं। मुख्य कारण हैं श्रीकृष्ण। क्योंकि जब तक माया के तीन गुण कृष्ण की चेतनामयी शक्ति से प्रभावित नहीं होते, तब तक सृष्टि कार्य करने का तीनों गुणों में सामर्थ्य नहीं होता।

लोहा जब आग में रहता है तब उसके अन्दर भी जलाने की क्षमता आ जाती है। लेकिन आग के बाहर लोहे में इस शक्ति का संचार नहीं रहता। जिस प्रकार बिजली का तार बिजली तभी बनता है, जब वह बिजली से सम्बंधित हो, अन्यथा वह केवल एक साधारण तार है। पॉवर हाउस हमेशा एक विशेष इंजीनियर के नियंत्रण में रहता है। उसी तरह यह भौतिक प्रकृति के भी मुख्य नियंत्रक केवल श्रीकृष्ण हैं। दुर्गा देवी अर्थात माया मात्रकृष्ण के नियंत्रण में कार्य करतीं हैं। कृष्ण के दृष्टिपात से ही मायादेवी इस भौतिक संसार को परिचालित करने में सक्षम होती हैं। माया कृष्ण की ही शक्ति हैं। जिस तरह प्रधान मंत्री की शक्ति से देश का कोना–कोना परिचालित होता है, जरुरी नहीं है कि प्रधान मंत्री को स्वयं हर जगह जाना पड़े, वैसे ही कृष्ण की दुर्गा शक्ति से सारा संसार चलता है।

दुर्गा शक्ति भगवान श्रीशंकर की पत्नी हैं। यह दुर्गा देवी ही माया शक्ति हैं जो जड़ जगत को जन्म देती हैं, परन्तु

वह मुख्य स्रष्टा नहीं हैं, वह गौण स्रष्टा हैं। मुख्य स्रष्टा तो श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण के बिना दुर्गा देवी यह सृष्टि नहीं कर सकतीं। भौतिक जगत में लोग दुर्गा देवी को कर्ता–धर्ता–हर्ता मानते हैं, लेकिन मूल कर्ता–धर्ता–हर्ता श्रीकृष्ण हैं।

सृष्टि स्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा।
इच्छानु:पमपि यस्य च चेष्टे सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।४४।।

अनुवादः भौतिक जगत् की सृष्टि , स्थिति एवं प्रलय की साधन– कारिणी, चित्तशक्ति की छाया–स्व:पा माया शक्ति, जो कि सभी के द्वारा दुर्गा नाम से पूजित होती हैं, जिनकी इच्छा के अनुसार वे चेष्टाएँ करती हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविंद का मैं भजन करता हूँ।

(ब्र. सं. ५.४४)

"मै कृष्ण का नित्य दास हूँ" यह भूल जाने के कारण ही जीव भौतिक संसार:पी कारागार में माया द्वारा बंदी बनाया जाता है। भौतिक संसार एक कारागृह है, और यहाँ की नियंत्रक हैं महामाया दुर्गा देवी। कारापाल या कारागाराधिपति का कार्य होता है बंदियों को दु:ख देकर सुधारना, यही दुर्गा देवी का कार्य है। माया इस भौतिक संसार रूपी कारागार में श्रीकृष्ण विमुख जीवो को बंदी बनाकर दण्ड प्रदान करती हैं। जैसे राजा प्रजा की भलाई

के लिए ही बंदीगृह बनाते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने करुणावश ही विमुख जीवों के लिए भौतिक संसार की रचना की और दुर्गा देवी को इसकी रक्षयित्री नियुक्त किया है।

दुर्गा देवी इन कृष्ण विमुख जीवों को सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के बन्धनों से बाँधती हैं। सतोगुण को सोने का बंधन, रजोगुण को चांदी का बंधन और तमोगुण को लोहे का बंधन जैसा माना जा सकता है, जो सही अर्थ में बंधन ही है। सतोगुणी व्यक्ति मृत्यु के बाद स्वर्ग जाते हैं, देवताओं के बीच जन्म लेते हैं और पुण्य क्षय होने पर पुनः मृत्युलोक में आ गिरते हैं। इस तरह उनका आवागमन चलता रहता है और जन्म–मृत्यु–जरा–व्याधिरूपी माया की मार खाते रहते हैं। रजोगुणी और तमोगुणी व्यक्ति मृत्यु के बाद नरक जाते हैं और पुनः मृत्यु लोक में जन्म लेते हैं। अगर व्यक्ति रजोगुणी है तो मनुष्य रूप में और तमोगुणी है तो पशु– पक्षी के:प में जन्म लेकर माया की मार खाते रहते हैं। भगवान कृष्ण परमात्मा के रूप में जीव का हर कार्य और उनके फलों का साक्षी बनते हैं। जीव जैसी भावना रखता है, वैसा ही शरीर प्राप्त करता है और कृष्ण इन सभी गतिविधियों के परमात्मा के रूप में साक्षी बनते हैं।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषषवजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति
अनश्नन्न अन्योऽभिचाकशीति।।

अनुवादः संसार रूपी पीपल के पेड़ पर दो पक्षी बैठे हुए हैं – एक बद्धजीव, दूसरा उसके सखारूप में– ईश्वर। बद्ध जीवरूपी पक्षी संसार रूपी वृक्ष के फलों को चखते हैं और ईश्वररूपी पक्षी इन फलों का स्वयं उपभोग न कर जीवरूपी पक्षी के आस्वादन कार्य को देखते हैं।

(श्वे.उ.४.६ , मु.उ. ३.१.१, ऋग्वेद १.१६४.२१)

जीव माया द्वारा बद्ध होकर कर्म करता है और माया की मार खाता है। माया के अधीश्वर श्रीकृष्ण जीव को उसके कर्मानुसार फल देते हैं। जब तक जीव कृष्ण–उन्मुख नहीं हो जाता माया की मार खाता रहता है।

माया के दो प्रकार के विभाग हैं – विघा और अविघा। विघा से जीव की मुक्ति होती है और अविघा से बंधन। जब जीव कृष्ण–उन्मुख होने लगता है तो उसके अन्दर विघा वृत्ति की क्रिया आरंभ हो जाती है। ब्रह्म ज्ञान आदि वि।ावृत्ति की ही क्रियाएँ हैं। परन्तु जब तक जीव कृष्ण को भुला हुआ है तब तक अविघा की क्रिया चलती रहती है। अविघा जीव को आवृत करती है और विघा जीव को इस आवरण से मुक्त करती है। लेकिन जो नितान्त तमोगुणी होते हैं उन लोगों को नरक में दण्ड भुगतने के बाद पृथ्वीलोक में भी लता, वृक्ष, तृण, पत्थर आदि की योनी मिलती है, जैसे कि नारद मुनि के अभिशाप से नलकुबेर और मणिग्रीव को वृक्ष की योनी मिली और पति के श्राप से अहल्या को पत्थर की योनी मिली।

बन्दर पकड़ने वाले अक्सर एक छोटे मुंह वाले घड़े में चने रख देते हैं। बन्दर वहां आता है और चनों के लालच में घड़े में हाथ डालता है। वह मुट्ठी में चने भर लेता है परन्तु मुट्ठी के बन्द होने के कारण हाथ बाहर नहीं निकाल पाता और इस तरह मदारी के हाथो बंदी हो जाता है। बाद में उसे शेष जीवन परतंत्र होकर नाचना पड़ता है। जो जीव मुक्त होना चाहता है, पर भौतिक आसक्ति को भी नहीं छोड़ता, वह उस बन्दर की तरह ही है, जो मुक्त तो होना चाहता है, परन्तु चनारूपी भौतिक संसार नहीं छोड़ता। इसी कारण माया उसको बंदी बनाकर नचाती रहती है।

उदाहरणस्वरूप, यदि एक व्यक्ति पेड़ को पकड़कर चिल्लाता है कि पेड़ मुझे नहीं छोड़ रहा, परन्तु वास्तविकता तो यह है कि पेड़ ने उसे नहीं पकड़ा, उसने पेड़ को पकड़ रखा है। वास्तव में हमने भौतिक आसक्तिरूपी माया को पकड़कर रखा है। इसलिए हमें माया की मार खानी पड़ती है।

श्रीकृष्ण से विमुख आत्मा को मार मारने के लिए माया यह जड़ जगत पैदा करती है। जो आत्माएं कृष्ण–विमुख हो जाती हैं, उन आत्माओं को माया अपनी मार मारती है। जीव इन्द्रिय तृप्ति में इतना मुग्ध और व्यस्त हो जाता है कि उसे पता ही नहीं चलता कि इस भौतिक जगत से बाहर भी कुछ है। विमुख जीव की भौतिक इच्छा पूर्ण करने के लिए माया ने यह जड़ जगत का जाल रचाया है, जिसमें जीव फंस जाता है और दुखी रहता है।

सृष्टि का उद्देश्य है अनादि काल से श्रीकृष्ण–विमुख जीव को अपना कर्मफल भोगने के लिए अनुकूलता प्रदान करना। जीव का कर्म भौतिक है – जड़ है। कर्मफल और कर्मफल भोगने के लिए सारा साज–सामान भी जड़ है। इसलिए जीव को माया–निर्मित त्रिगुणात्मक जड़ देह प्रदान करना आवश्यक है, ताकि वह जड़ देह से जड़ विषयों का भोग कर सके। यह सब माया का कार्य है। माया इस प्रकार जीवों को भौतिक कर्म भोगने की सुविधा देकर उसे अपनी मार मारती है जिससे जीव शुद्ध हो सके और वह भगवान श्रीकृष्ण की सेवा के लायक बन सके। भौतिक कर्मफल भोगने के लिए उन भौतिक कर्मों में जीव को प्रवृत्त करना भी जड़ माया का ही कार्य है।

आध्यात्मिक जगत की आह्लादिनी शक्ति का विस्तार भौतिक जगत में महामाया दुर्गा के रूप में होता हैं। योगमाया भगवान श्रीकृष्ण की चित्त शक्ति है। योगमाया जीवों को भगवान के पास ले जाकर उनको आनंद, प्रेम और सुख देती है और महामाया जीवों को भगवान से दूर ले जाकर अपनी मार मारती है।

जैसे ही हम अपने आप को शरीर समझने की भूल करते हैं और आत्माःप में अपना कर्तव्य भूल जाते हैं, तभी हमें दुखों का सामना करना पड़ता है। आत्मस्थित किसी भी व्यक्ति को सांसारिक दुःख छू भी नहीं सकता जिस प्रकार की कमल के पत्र को जल स्पर्श नहीं कर सकता, यधपि

कमल–पत्र जल में ही रहता है। इसी तरह, कृष्ण से विलग हर वस्तु माया है, और कृष्ण से जुड़ी हर वस्तु वास्तविक है।

माया के उग्र स्वरुप हैं–कंचन (धन) और कामिनी (स्त्री)। श्रील प्रभुपाद कहते हैं अगर हमें माया का चित्र अंकित करना है तो सुन्दर स्त्री और रुपये का चित्र अंकित करने पर 'माया क्या है' समझ में आ जाता है। सुन्दर स्त्री और रुपया जब तक भगवान श्रीकृष्ण और धर्मसम्बन्धी हैं तो ये दोनों माया का उग्र स्वरुप नहीं लेते। लेकिन अधिकांशतः हम दोनों को हमारी इन्द्रिय तृप्ति के लिए ही चाहते हैं। इसलिए दोनों माया बन जाते हैं। श्रीमद् भागवत में कहा गया है–

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं
तयोर्मिथो हृदयग्रंथिमाहुः।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैः
र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति।।८।।

अनुवादः स्त्री तथा पुरुष के मध्य का आकर्षण भौतिक अस्तित्व का मूल नियम है। इस भ्रान्त धारणा के कारण स्त्री तथा पुरुष के हृदय परस्पर जुड़े रहते हैं। इसी के फलस्वरूप मनुष्य अपने शरीर, घर, संतान, स्वजन तथा धन के प्रति आकृष्ट होता है। इस प्रकार वह जीवन के मोहों को बढ़ाता है और "मैं तथा मेरा" के:प में सोचता है।

(भा. 5.5.8)

श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, "स्त्री तथा पुरुष के बीच सहज आकर्षण का प्रमुख कारण विषयभोग है और विवाहित होने पर यह आकर्षण और भी दृढ़ हो जाता है। स्त्री तथा पुरुष के यह ग्रंथिल सम्बन्ध के कारण मोह उत्पन्न होता है, जिससे यह सोचना पड़ता है कि 'अमुक पुरुष मेरा पति है' या 'अमुक स्त्री मेरी पत्नी है'। यह हृदय– ग्रंथि कहलाती है। इस ग्रंथि को खोल पाना कठिन है भले ही स्त्री तथा पुरुष वर्णाश्रम के नियमों के अनुसार या विवाह विच्छेद के कारण विलग क्यों न हो लें। प्रत्येक दशा में स्त्री पुरुष के बारे में और पुरुष स्त्री के बारे में सोचता रहता है। इस प्रकार व्यक्ति परिवार, धन तथा संतान के प्रति भौतिक रूप से आसक्त हो जाता है, भले ही ये सब क्षणिक ही क्यों न हों। ऐसा व्यक्ति दुर्भाग्यवश अपने आपको अपनी संपत्ति और धन से जोड़ लेता है और उसे अपनी पहचान बना लेता है। कभी कभी संन्यास लेने के बाद भी व्यक्ति किसी मंदिर में या अपनी कतिपय वस्तुओं में आसक्त हो जाता है, जिन्हें वह अपनी संपत्ति समझने लगता है, किन्तु ऐसी आसक्ति गृहस्थी के प्रति आकर्षण के समान बलवती नहीं होती। परिवार की आसक्ति सबसे प्रबल मोह है। सत्य संहिता में कहा गया है:

ब्रह्मा॥ याज्ञवल्का॥ मुच्यन्ते स्त्री–सहायिनः।
बोध्यन्ते केचनैतासां विशेषं च विदो विदुः।।

अनुवादः कभी कभी यह देखा जाता है कि ब्रह्मा जैसे महापुरुषों के लिए स्त्री तथा पुत्र बंधन के कारण नहीं

बनते। उल्टे, पत्नी आध्यात्मिक जीवन तथा मुक्ति में सहायक बनती है। तो भी अधिकांश व्यक्ति दाम्पत्य भाव की ग्रंथि से बंधे रहते हैं, फलतः वह कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को भूल जाते हैं।

(तात्पर्य भा. 5.5.8)

पत्नी श्रीकृष्ण की सेविका है, न कि पति के इन्द्रिय तृप्ति का साधन।

यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां
स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित्।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापान्
आसा। मैथुन्यमगारमज्ञः।।७।।

अनुवादः भले ही कोई कितना ही विद्वान तथा चतुर क्यों न हों, यदि वह यह नहीं समझ पाता कि इन्द्रियतृप्ति के लिए की जाने वाली चेष्टाएं व्यर्थ ही समय की बर्बादी है, तो वह पागल है। वह आत्म–हित को भूलकर इस संसार में विषयवासना–प्रधान तथा समस्त भौतिक क्लेशों के आगार अपने घर में आसक्त रहकर प्रसन्न रहना चाहता है। इस प्रकार मनुष्य मूर्ख पशु के ही तुल्य होता है। (भा. 5.5.7)

इस श्लोक के तात्पर्य में श्रील प्रभुपाद बताते है, "भक्ति की निम्नतम (अधम) अवस्था में मनुष्य शुद्ध भक्त नहीं होता। 'अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान–कर्मादि अनावृतम' – शुद्ध भक्त होने के लिए मनुष्य को समस्त भौतिक कामनाओं से मुक्त होना चाहिए तथा उसे कर्म एवं शुष्क ज्ञान छूना तक

नहीं चाहिए। निम्न अवस्था में कभी कभी दार्शनिक चिंतन में रूचि हो सकती है, जिस पर भक्ति का रंग चढ़ा हो। किन्तु इस अवस्था में भी मनुष्य इन्द्रिय तृप्ति चाहता है और प्रकृति के गुणों से दूषित रहता है। माया का इतना जबरदस्त प्रभाव रहता है कि ज्ञानी पुरुष भी वास्तव में यह भूल जाता है कि वह श्रीकृष्ण का चिरंतन दास है। इसलिए वह विषयभोग के चारो ओर केन्द्रित गृहस्थ जीवन में ही आसक्त और संतुष्ट रहता है। वह विषयी जीवन के समक्ष नत होकर समस्त प्रकार के भौतिक क्लेशों को सहन करता है। अज्ञानवश वह इस प्रकार भौतिक नियमों की सांकल से बन्ध जाता है।"

(भा. 5.5.7 तात्पर्य)

भौतिक जगत में स्त्री, गृह, क्षेत्र, सुत (पुत्र), आप्त (सम्बन्धी), वित्त (धन) ये माया के उग्र स्वरुप हैं। इन चीजों में जीव की आसक्ति ही दुःख पैदा करती है।

प्रह्लाद महाराज अपने पिता से कहते हैं कि,

श्रीप्रह्लाद उवाच
तत्साधु मन्येअसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत।।५।।

अनुवादः प्रह्लाद महाराज ने उत्तर दियाः ''हे असुरश्रेष्ठ दैत्यराज, जहाँ तक मैंने अपने गुरु से सीखा है, ऐसा

कोई व्यक्ति जिसने क्षणिक देह तथा क्षणिक गृहस्थ जीवन स्वीकार किया है, वह निश्चय ही चिंता ग्रस्त रहता है, क्योंकि वह ऐसे अंधे कुएँ में गिर जाता है जहाँ जल नहीं रहता, केवल कष्ट ही कष्ट मिलते हैं।'' मनुष्य को चाहिए कि इस स्थिति को त्याग कर वन में चला जाए। स्पष्टार्थ यह है कि मनुष्य को चाहिए कि वह वृन्दावन जाये जहाँ केवल कृष्णभावनामृत व्याप्त है और इस तरह वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान की शरण ग्रहण करे।

(भा. ७.५.५)

अर्थात, गृह अंधकूप हैं, जहाँ मनुष्य माया में गिर जाता है, इसलिए श्रीकृष्ण की भक्ति नितांत आवश्यक है। इसके बिना माया से बचने का और कोई उपाय नहीं है।

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुखम।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभा
कण्डूतिवन्मनसिजं विर्षहेत धीरः।।४५।।

अनुवादः विषयी जीवन की तुलना खुजली दूर करने हेतु दो हाथों को रगड़ने से की गयी है। गृहमेधी अर्थात तथाकथित गृहस्थ जिन्हें कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, सोचते हैं कि यह खुजलाना सर्वोत्कृष्ट सुख है, यद्यपि वास्तव में यह दुःख की जड़ है। कृपण जो ब्राह्मणों से सर्वथा विपरीत होते हैं, बारम्बार इन्द्रिय भोग करने पर भी तुष्ट नहीं होते। किन्तु जो धीर हैं और इस खुजलाहट

को सह लेते हैं, उन्हें मूर्खों और धूर्तों जैसे कष्ट नहीं सहने पड़ते।

(भा. 7.9.45)

श्रील प्रभुपाद इस श्लोक (भा. 7.9.45) के तात्पर्य में कहते हैं, "भौतिकतावादी सोचते हैं कि इस संसार का सबसे बड़ा सुख विषयासक्ति है, अतएव वे अपनी इन्द्रियों को, विशेष रूप से कामेन्द्रियों को, तुष्ट करने के लिए बड़ी–बड़ी योजनायें बनाते हैं। ऐसा सामान्यतया सर्वत्र और विशेष रूप से पाश्चात्य जगत में पाया जाता है जहाँ विषयी जीवन की तुष्टि के लिए विभिन्न प्रकार के नियमित प्रबंध होते हैं। किन्तु तथ्य यह है कि इससे कोई सुखी नहीं हो पाया है। यहाँ तक कि वे हिप्पी भी नहीं, जिन्होंने अपने बाप–दादों के भौतिक सुखों का परित्याग कर दिया है, विषयी जीवन के उत्तेजक सुख नहीं त्याग सके। ऐसे लोगो को यहाँ पर कृपण कहा गया है।

यह मनुष्य –जीवन एक महान निधि है, क्योंकि इसी जीवन में मनुष्य अपने जीवन–लक्ष्य को पूरा कर सकता है। किन्तु दुर्भाग्यवश शिक्षा तथा संस्कृति के अभाव में लोग विषयी जीवन के मिथ्या सुख के शिकार बन जाते हैं। इसलिए प्रहलाद महाराज यह उपदेश देते हैं कि इस इन्द्रियतृप्ति की सभ्यता से, विशेष रूप से विषयी जीवन से, भ्रमित न हुआ जाये। मनुष्य को धीर होना चाहिए, इन्द्रियतृप्ति से बचना चाहिए और कृष्णभावनाभावित होना चाहिये।

इस के विपरीत कंजूस के समान ही कामी पुरुष कभी भी इन्द्रियतृप्ति से सुख–लाभ नहीं कर पाता। प्रकृति के प्रभाव से बच पाना दुष्कर है किन्तु जैसा कि कृष्ण ने भगवद गीता (७.१४) में कहा है – मामेव ये प्रपघन्ते मायामेतां तरन्ति ते – यदि कोई स्वेच्छा से कृष्ण के चरण कमलो में आत्मसमर्पण करता है, तो वह आसानी से बच सकता है।

विषयी जीवन के निम्नकोटिक सुख के विषय में यामुनाचार्य कहते है:

यदावधि मम चेतः कृष्णपदारविन्दे
नव–नवरसधामनुद्यत रंतुमासीत।
तदावधि बतनारीसंगमें स्मर्यमाणे,
भवति मुखविकारः सुष्टु निष्ठीवनं च।

"चूँकि मैं कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा हूँ और उन्हीं में नया नया आनंद पाता रहा हूँ, अतएव जब भी मैं विषय सुख के बारे में सोचता हूँ तभी इस विचार पर थू–थू करता हूँ और मेरे होंठ अरुचि से विकृत हो जाते हैं।।" यामुनाचार्य पहले एक बड़े राजा थे जिन्होंने अनेक प्रकार का इंद्रिय सुख भोगा था, किन्तु जब बाद में वे भगवान की सेवा में रत हुए तो उन्हें आध्यात्मिक आनंद मिला और विषयी जीवन के विचार पर घृणा होने लगी। यदि विषय–विचार उनके मन में आता भी था, तो वे घृणा से उस पर थू–थू करते थे।

द्वितीय अध्याय :
शास्त्रों से उदाहरण

सौभरि मुनि

माया की मार का सामना उन सभी व्यक्तियों को करना पड़ता है जो वैष्णव अपराध करते हैं। सौभरि मुनि ने गरुड़ पक्षी, जो कि भगवान विष्णु के वाहन हैं, के प्रति अपराध किया था। गरुड़ पक्षी का आहार ही मछली है। परन्तु सौभरि मुनि गरुड़ पक्षी को सावधान करते हैं कि अगर वह फिर से उस जल में मछली पकड़ने आये तो अच्छा नहीं होगा। वैष्णव गरुड़ के प्रति इस तरह सौभरि मुनि ने अपराध किया। इसके कारण यमुना नदी के पानी के अन्दर तपस्या करने पर भी दो मछलियों के मैथुन सम्बन्ध को देखकर उनके मन में काम भाव उत्पन्न हो गया। यही माया की मार है। परिणामस्वरूप वह राजा मान्धाता की पचास राजकुमारियों से विवाह करते हैं और उनको बहुसंख्या में बच्चे होते हैं। वह उनमें आसक्त होकर सांसारिक भोग में लिप्त हो जाते हैं। बाद में अपनी की हुई तपस्या का पुनः स्मरण होने पर वह पश्चाताप करते हैं और कहते हैं कि,

अहो इमं पश्यत मे विनाशं
तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य।

अंतर्जले वारिचरप्रसङ्‌गात्
प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत।।५०।।

अनुवादः''ओह! गहन जल के भीतर तपस्या करने पर तथा साधु पुरुषों द्वारा अभ्यास किये जाने वाले सारे विधि विधानों का पालन करते हुए भी मैंने मात्र मछली के मैथुन सान्निध्य के कारण अपनी दीर्घकालीन तपस्या का फल गवाँ दिया। इस पतन को देखकर हर एक को इससे सीख लेनी चाहिए।''

(भा. 9.6.50)

सौभरि मुनि यह सोचकर जल के अन्दर तपस्या कर रहे थे कि जल के बाहर बहुत माया का प्रभाव है। परन्तु जल के अन्दर भी माया रहती है। सिर्फ मछली का मैथुन देखकर सौभरि मुनि के मन में आया कि अगर मछली होकर मैथुन में इतना आनंद भोग है, तो मनुष्य होकर मुझे कितना आनंद होगा। यही सोचकर उन्होंने तपस्या त्याग दी और इस तरह माया की मार का शिकार हुए। परन्तु बाद में भगवान की कृपा से उनको पता चल गया कि मछली के सम्भोग दृश्य की संगति के कारण ही उनकी तपस्या भंग हुई थी।

कुबेर पुत्र नलकुबेर और मणिग्रीवः

जब कुबेर के दोनों पुत्र नलकुबेर और मणिग्रीव नशे में मदमत्त होकर वस्त्रहीन अवस्था में अप्सराओं के साथ

जलक्रीड़ा कर रहे थे। नारद मुनि को देखकर भी उन्होंने कोई शिष्टाचार नहीं दिखाया जबकि अप्सराओं ने अपने शरीर ढक लिये। इसलिए वे नारद मुनि द्वारा श्रापित हुए और उन दोनों को वृक्ष का शरीर मिला। स्त्री और मदिरा के प्रति उनकी आसक्ति ही माया की मार थी। कुबेर के पुत्र होने पर भी मदिरा और स्त्री के नशे में उन दोनों ने देवर्षि नारद के आगमन पर कोई शिष्टाचार नहीं दिखाया, इसलिए उनको श्राप मिला। वैष्णव का श्राप भी बहुत कल्याणप्रद होता है, इसलिए उन लोगों का उद्धार स्वयं भगवान कृष्ण द्वारा ही हुआ। वर्षों तक वे वृक्ष बनकर गोकुल में रहे। भगवान श्रीकृष्ण ने उखल से यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार किया। इस तरह वे दोनों माया से मुक्त हुए।

इन्द्र और अहल्याः

स्वर्ग में रहे देवता भी माया की मार से नहीं बच सकते क्योंकि माया का प्रभाव भौतिक संसार के कण – कण पर होता है। ब्रह्मा ने सबसे सुन्दर कन्या अहल्या को बनाया। इन्द्र और बड़े–बड़े देवता सोच रहे थे शायद ब्रह्मा अहल्या का हाथ उनको दे दें। अहल्या की सुन्दरता ने सबको मोह लिया था। इन्द्र सोच रहे थे कि ब्रह्मा संभवतः अहल्या का विवाह इन्द्र से कर देंगे, क्योंकि वही स्वर्ग के राजा हैं। अहल्या के सृजन के बाद कुछ समय अहल्या को गौतम ऋषि के आश्रम में रखा गया। परन्तु ब्रह्मा ने जब देखा

कि इतनी सुन्दर स्त्री के आश्रम में रहने के बावजूद गौतम ऋषि का अहल्या के प्रति कोई ऐसा भाव नहीं था, तो ब्रह्मा ने तय किया कि गौतम ऋषि ही अहल्या के लिए उपयुक्त वर हैं। अहल्या और गौतम ऋषि के विवाह से सबसे ज्यादा दुखी इन्द्र हुए। वह कैसे भी अहल्या का भोग करना चाहते थे। यही माया की मार है गौतम ऋषि भक्ति में दृढ़ थे, तो माया की मार नहीं पड़ी, परन्तु इन्द्र की दृष्टि हमेशा सुन्दर अहल्या पर टिकी हुई थी, तो माया की मार पड़ी। इन्द्र ने गौतम ऋषि का वेश धारण करके अहल्या का भोग करने का दुस्साहस किया। जिसके फलस्वः प गौतम ऋषि द्वारा श्रापित हुए, और इन्द्र के पूरे शरीर में स्त्री योनी का चिन्ह बन गया। माता अहल्या ने भी जब अपना पति समझकर इन्द्र के साथ संग किया तो गौतम ऋषि ने उनको भी पत्थर योनी प्राप्त करने का श्राप दिया। परन्तु अहल्या की क्षमा अर्चना पर ऋषि को दया आई, और उन्होंने कहा कि त्रेता युग में श्रीराम के चरण स्पर्श से उनका उद्धार होगा। इस तरह एक भक्त का वचन पूरा करने के लिए भगवान राम ने पत्थर को स्पर्श किया और अहल्या पत्थर योनी से मुक्त होकर पतिदेव के निकट चली गयीं।

भरत महाराजः

भरत महाराज भगवान के अवतार ऋषभदेव के सौ पुत्रो में सबसे ज्येष्ठ पुत्र थे। भगवान की भक्ति करने हेतु वह

राज्य का सुख छोड़कर वन में पुलह आश्रम में रहने लगे। उनकी भक्ति इतनी तीव्र थी कि भरत महाराज जल्दी ही भाव स्तर तक पहुँच गए। एक दिन वह जब गण्डकी नदी के तट पर मंत्रोच्चारण के लिए बैठे थे, उन्होंने देखा एक गर्भवती हिरनी, सिंह की गर्जना सुनकर नदी को पार करने के लिए छलांग लगाती है और उनके गर्भ से बच्चा निकलकर पानी में बहने लगता है। माता हिरनी की मृत्यु हो जाती है। भगवान के भक्त सभी प्राणियों के प्रति दयालु होते हैं। भरत मुनि उस हिरन के बच्चे को आश्रम ले आए।

धीरे–धीरे उसके प्रति भरत महाराज की आसक्ति बढ़ने लगी। वह हिरन के बच्चे का ध्यान घास खिलाकर रखने लगे। वह बड़ी सतर्कता के साथ हिरन की रक्षा करते, कभी हिरन को खुजली होती तो वह सहलाते, कभी प्यार से चूमते, उनको लगता था कि इस हिरन का उनके बिना और कोई भी नहीं है। उस मृग के प्रति आसक्ति बढ़ जाने के कारण राजा भरत उसी के साथ लेटते, टहलते, स्नान करते और खाना भी खाते। वे जहाँ–जहाँ जाते उसे साथ ले जाते। मृग के चपल स्वभाव ने उनका मन मोह लिया और वह इस प्रकार मृग की मोह माया में पड़ गए। कभी मृग को कंधे पर लेकर घुमाते, कभी गोदी में बिठाते तो कभी सोते समय सीने में चढ़ा के सो जाते। कभी ईश्वर आराधना के बीच में ही उठ जाते और मृग को देखते कि वह ठीक प्रकार से है या नहीं, तभी मन में संतोष मिलता।

कभी मृग को नहीं देखते तो अत्यंत चिंतित होकर विलाप करने लगते। इस प्रकार हिरन के प्रति आसक्त हो जाने के कारण भरत महाराज भक्ति के यम–नियम भूल गए, यहाँ तक कि भगवान की आराधना भी भूल गए।

मृत्यु के समय भी उनके ध्यान में हिरन की चिंता रहने के कारण उनको अगला जन्म हिरन का लेना पड़ा। भक्तों की संगति में भक्ति करने से हम माया के बडे से बडे प्रभाव से बच सकते हैं। परन्तु भरत मुनि के पास ऐसा कोई नहीं था जो उनको बता सके कि हिरन के प्रति उनका ध्यान अंत समय में ज्यादा और भगवान के प्रति कम हो जाएगा। जिसके कारण उनको पशु योनी में प्रवेश करना पड़ा। पर भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से उनको पूर्व जन्म याद रहा और वह अन्य हिरनों से अलग ऋषि के आश्रम के पास सूखा पत्ता खाते हुए दिन बिताने लगे। हिरन के जन्म के बाद उनको जड़ भरत के रूप में मनुष्य जन्म मिलता है तब वह अत्यंत सावधानी से भगवान की भक्ति में जीवन बिताने लगे। जड़ भरत के जन्म के बाद उनको भगवद् धाम प्राप्त हुआ और इस तरह माया से उनकी रक्षा हुई।

जैमिनी ऋषि :

अपने शिष्य जैमिनी ऋषि को श्रील व्यासदेव ने शास्त्रों में यह लिपिबद्ध करने को कहा कि भगवान श्रीकृष्ण की मायाशक्ति इतनी शक्तिशाली है कि बड़े बड़े ऋषि–मुनि भी इनके प्रभाव में आ सकते हैं।

माता स्वस्त्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।१७।।

अनुवादः मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी माता, बहन या पुत्री के साथ एक ही आसन पर न बैठे क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि बड़े से बड़ा विद्वान भी यौन द्वारा आकृष्ट हो सकता है।

(भा. 9.19.17)

परन्तु जैमिनी ऋषि इस बात को मानने को तैयार नहीं थे कि माया बड़े से बड़े ऋषि को भी परास्त या प्रभावित कर सकती है। श्रील व्यासदेव ने कहा कि लिखने का कार्य अगले दिन करेंगे। उस दिन दोनों अपने अपने आश्रम में चले गए। रात को बहुत तूफान आया। जोरों से वर्षा हो रही थी। जैमिनी ऋषि को एक स्त्री की आवाज सुनाई दी, "रक्षा करो, रक्षा करो"। उन्होंने खिड़की से बाहर देखा तो बिजली कड़की और उसकी रोशनी में एक स्त्री दिखाई पड़ी। पानी से स्त्री के कपड़े स्त्री की शरीर से चिपक गए थे और उसके शरीर का सौंदर्य निखरकर बाहर आ रहा था। जैमिनी ऋषि ने यह रूप बिजली के कड़कने से देखा। बाहर मौसम बहुत खराब था तो बाध्य होकर स्त्री को आश्रय देने के लिए जैमिनी ऋषि ने दरवाजा खोला। स्त्री को एक कमरा दिया और कहा कि रात को कोई भी बुलाये दरवाजा नहीं खोलना, यहाँ तक कि अगर जैमिनी ऋषि स्वयं भी बुलायें तो भी नहीं।

परन्तु जैमिनी ऋषि सो नहीं पाए, बार बार मन में स्त्री के उस रूप का ध्यान करते रहे जो बिजली के कड़कने से दिखाई पड़ा था। उन्होंने सोचा तुरंत स्त्री से बात करनी होगी। यह सोचकर उन्होंने दरवाजा खटखटाया, परन्तु स्त्री ने दरवाजा नहीं खोला और कहा कि मुझे जैमिनी ऋषि ने कहा है कि किसी के लिए भी दरवाजा नहीं खोलूं। जैमिनी ऋषि ने कहा, "मैं स्वयं जैमिनी ऋषि हूँ"। स्त्री ने बोला, "जैमिनी ऋषि का आदेश है कि अगर वह स्वयं भी बोले तो भी मैं दरवाजा न खोलूं।" जैमिनी ऋषि अधर्य हो उठे और कहा, "अब मैं स्वयं जैमिनी ऋषि तुमको आदेश दे रहा हूँ कि शीघ्र दरवाजा खोलो।" तब युवती ने दरवाजा खोला। ऋषि ने उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। युवती बहुत प्रसन्न हुई और बोली "आप जैसे महान ऋषि से भला कौन विवाह नहीं करना चाहेगा ? परन्तु मेरी एक शर्त है, यदि आप स्वीकार करें तभी मैं विवाह कर सकती हूँ।" ऋषि ने कहा, "तुम्हारी कोई भी शर्त मैं मानने के लिए तैयार हूँ।" तब उस स्त्री ने कहा,"यहाँ से थोड़ी दूरी पर एक दुर्गा मंदिर है। यदि मुझसे विवाह करना चाहते हैं, तो घोड़ा बनकर मुझे ऊपर बिठाकर उस मंदिर तक ले जाना होगा। तभी मैं विवाह करूँगी।"

जैमिनी ऋषि तुरंत तैयार हो गए और विलम्ब किये बिना घोड़े की तरह स्थिति बना ली और वह युवती उनके ऊपर बैठ गयी। रात बहुत अंधकारमय थी, ऊपर से मुसलधार

वर्षा भी थी। रास्ते में पड़े कंकर, पत्थर और कांटे आदि जैमिनी ऋषि के हाथों और पैरों को चुभे। परन्तु ऋषि के मन में उस स्त्री को पाने की इतनी तीव्र अभिलाषा थी कि उनको यह सब ध्यान में ही नहीं आया। जैसे ही दुर्गा मंदिर पहुंचे वह अपनी दुल्हन को आलिंगन करना चाहते थे। तब सुबह हो चुकी थी, और जैमिनी ऋषि ने देखा उस स्त्री के गाल पर बड़ी दाढ़ी है। वह आश्चर्य चकित हुए कि एक स्त्री की इतनी लम्बी दाढ़ी कैसे हो सकती है ? तब वह ध्यान से देखते हैं तो पता चलता है कि वह तो उनके गुरु श्रील व्यासदेवजी हैं। वह लज्जा के कारण आँखे नहीं मिला पाये। श्रील व्यासदेव कहते हैं, "देखो, मायाशक्ति कितनी शक्तिशाली है कि तुम्हारे जैसे बड़े ऋषि को भी प्रभावित कर सकती है।" तब जैमिनी ऋषि ने इस बात को मान लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान की माया शक्ति बहुत ही प्रभावशाली है। इसलिए हमें सदा श्रीकृष्ण के संरक्षण में रहना चाहिए।

राजा चित्रकेतु

राजा चित्रकेतु की एक करोड़ रानियाँ थी। फिर भी उनको पुत्र प्राप्ति नहीं हुई। जिस कारण राजा बहुत दुखी और निराश रहने लगे। उनको राज्य का उत्तराधिकारी चाहिए था। यही माया है। राजा की यह इच्छा और पुत्र न होने का दुःख माया की मार थी। एक दिन अंगिरा ऋषि उनके राज्य में पधारे। उनका राज्य हर तरह से समृद्ध था। सारी

रानियाँ बहुत ही सुन्दर थीं। फिर भी ऋषि ने देखा कि राजा के मन में विषाद का बादल छाया हुआ है। असल में महान ऋषि अंगिरा सब जानते थे, फिर भी उन्होंने राजा से इस दुःख का कारण। पूछा राजा ने अपने दुःख का कारण ऋषि के सामने रखा। उन्होंने ऋषि से प्रार्थना की कि ऋषि उनको कोई उपाय बताऐं जिससे वह पुत्र प्राप्त कर सकें और उनके पूर्वजों को नरक में जाने से बचा सकें। कर्मकांड में ऐसा कहा जाता है, कि पिंडदान देने के लिए पुत्र का होना अनिवार्य है। परन्तु यदि कोई कृष्ण भक्ति में है, और भागवत धर्म का पालन कर रहा है, उसकी रक्षा भगवान कृष्ण करते हैं। यहाँ तक कि उसके पूर्वजों का भी उद्धार का कारण वह व्यक्ति बनता है, जो कृष्ण भक्ति में है।

अंगिरा ऋषि को राजा के प्रति दया आई। उन्होंने एक ऐसा यज्ञ संपन्न किया जिससे पुत्र प्राप्ति के लिए खीर मिली। यह खीर चित्रकेतु की सबसे ज्येष्ठ पत्नी क्रितद्‍युति को दी गई। फिर अंगिरा ऋषि ने राजा को कहा कि आपको एक पुत्र प्राप्त होगा जो सुख और दुःख का कारण बनेगा। समय आने पर रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा बहुत प्रसन्न था। जैसे यदि किसी गरीब व्यक्ति को बहुत कठिनाई से धन मिलता है तो प्रतिदिन धन के प्रति उसका आकर्षण बढ़ने लगता है ठीक इसी प्रकार चित्रकेतु की आसक्ति भी दिन प्रतिदिन पुत्र की ओर बढ़ने लगी। जब हमारा आकर्षण भगवान श्रीकृष्ण के प्रति कम और

परिजनों के प्रति ज्यादा बढ़ने लगता है, तो यह माया है। वह ज्यादातर समय पुत्र के साथ बड़ी रानी की कक्ष में बिताने लगे। ज्येष्ठ रानी के प्रति भी उनका आकर्षण बढ़ने लगा और बाकी रानियों पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

यह देखकर अन्य रानियाँ बहुत दुखी हुईं, और ईर्ष्या से जलने लगीं। दिन प्रतिदिन उनकी ईर्ष्या बढ़ने लगी, और इसके परिणामस्वःप उन्होंने बालक को विष दे दिया, जिससे राजा के पुत्र का देहांत हो गया। राजा को जब यह समाचार मिला उनके आँखों के आगे अन्धकार छा गया। पुत्र के प्रति तीव्र मोह–माया के कारण उनकी दुःख की तीव्रता भी बढ़ गयी। वह जब पुत्र का मृत देह देखने को जा रहे थे तो जमीन पर बार बार लड़खड़ाकर गिर रहे थे। शव को देखते ही राजा बेहोश हो गए। जब उनको होश आया तो भी शोक के कारण कुछ बोल नहीं पा रहे थे। रानी रो–रोकर भगवान को दोष दे रही थी। पुत्र न होने के दुःख से भी ज्यादा दुःख तब होता है जब पुत्र की अकाल मृत्यु हो जाए। इसलिए अंगिरा ऋषि ने कहा था कि यह पुत्र राजा के सुख और दुःख का कारण बनेगा। कुटुम्ब के प्रति यह आसक्ति ही भौतिक संसार में माया की मार है। जब अंगिरा ऋषि ने समझ लिया कि राजा रो रोकर मृतप्राय हो चुका है तो नारद मुनि के साथ वे वहाँ पधारे। राजा चित्रकेतु भगवान के भक्त थे। परन्तु भौतिक इच्छा के कारण उनको भी दुःख उठाना पड़ा। अंगिरा

ऋषि ने कहा,

तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः।
ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददाम्यहम।।२०।।

अनुवादः जिस समय पहले–पहल मैं तुम्हारे पास आया था, उसी समय मैं तुम्हे परम दिव्य ज्ञान दे देता, किन्तु जब मैंने देखा कि तुम्हारा मन भौतिक वस्तुओं में उलझा हुआ है, तो मैंने तुम्हे केवल एक पुत्र प्रदान किया जो तुम्हारे हर्ष और शोक का कारण बना।

(भा. 6.15.20)

दु:ख इस माया के संसार में लगा रहता है। यहाँ दुखों की श्रृंखला कभी टूटती नहीं। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को आध्यात्मिक जीवन के प्रति जागरूक होना चाहिए। और इस तरह सदा सर्वदा भगवान् की सेवा में लगे रहना चाहिए। अंगिरा ऋषि और नारद मुनि ने राजा चित्रकेतु को यही उपदेश दिया।

नारद मुनि ने योगशक्ति द्वारा शोकातुर स्वजनों के सामने पुत्र को पुनः जीवित कर दिया और बोले,''"हे पुत्र, तुम्हारा जीवन अभी शेष है। देखो तुम्हारे असमय जाने से तुम्हारे माता पिता कैसे शोकातुर हैं। अब यहाँ बाकी समय बिताओ और पिता का राज सिंहासन संभालो।" यह सुनकर वह जीव बोला,

जीव उवाच

कस्मिनजन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन।
कर्मभिःर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु।।४।।

अनुवादः मैं (जीव) अपने कर्म–फलों के अनुसार एक शरीर से दूसरे शरीर में देहांतर करता रहता हूँ। इस प्रकार कभी देवताओं की योनी में रहता हूँ तो कभी निम्न पशुओं, अथवा वनस्पतियों में और कभी मनुष्य योनी में रहता हूँ। अतः ये किस जन्म में मेरे माता तथा पिता थे? वास्तव में न तो कोई मेरी माता है न कोई मेरे पिता। तो मैं इन दोनों व्यक्तियों को अपने माता–पिता के रूप में कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ?

(भा. 6.16.4)

पुत्र रूप में जीव को ऐसा बोलते देख परिजनों ने उसके प्रति स्नेह बंधन को दाह–संस्कार के साथ ही त्याग दिया। यह आसान नहीं था परन्तु नारद मुनि और अंगिरा ऋषि की कृपा के कारण यह संभव हुआ। विष खिलाने वाली रानियों ने भी ब्राह्मणों के निर्देशानुसार यमुना में स्नान करके पश्चाताप किया। राजा चित्रकेतु नारद मुनि और अंगिरा ऋषि के उपदेश से शोकमुक्त हो गए।

स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विवजोक्तिभिः।
गृहान्धकूपान्निष्क्रांतः सरःपङ्कादिव द्विपः।।15।।

अनुवादः परम ब्राह्मण अंगिरा तथा नारद के उपदेशों से जागृत होकर राजा चित्रकेतु आत्मज्ञान से भलीभांति

अवगत हो गया। जिस प्रकार हाथी कीचड़–युक्त जलाशय से बाहर निकल आता है, वैसे ही राजा चित्रकेतु गृहस्थ जीवन के अंधकूप से बाहर निकल आए।

(भा. 6.16.15)

नारद मुनि ने उनको मंत्र दिया। अपने गुरु के मन्त्र का मात्र सात दिनों तक अभ्यास करने पर ही अन्तिम फल के:प में आत्मज्ञान हो जाने पर राजा चित्रकेतु को विघाधर का राज्य प्राप्त हुआ। तत्पश्चात उन्हें अनंतदेव की शरण प्राप्त हुई। इस तरह कोई भी व्यक्ति शुद्ध भक्त के उपदेशों के अनुसार और गुरु की आज्ञा का कठोरता से पालन करके माया के चंगुल से निकल सकता है और श्रीकृष्ण की प्राप्ति कर सकता है।

<u>नारद मुनि का विवाहः</u>

एक बार नारद मुनि हिमालय पर तपस्या कर रहे थे। तपस्या के बाद उनको अनुभव हुआ कि वह काम–सुख की इच्छा से पूर्णतया मुक्त हो चुके हैं। इस बात को हर जगह विचरण करके बताने लगे और उनको अहंकार भी हो गया कि अपनी तपस्या से उन्होंने माया को जीत लिया। असल में यह उनकी साधना के कारण नहीं हुआ था बल्कि शिवजी की तपस्या के कारण यह भूमि पवित्र हो चुकि थी। उस जगह का ऐसा महत्व था, क्योंकि वह उसी जगह तपस्या कर रहे थे जहाँ पहले शिवजी तपस्या कर रहे थे। कामदेव ने जब शिवजी को कामबाण मारकर काम

जागृत करने का प्रयास किया तो भगवान शिव ने अपनी एक ही दृष्टि से कामदेव को भस्म कर दिया था। कामदेव की पत्नी रति के अनुरोध पर भगवान शिव कामदेव को पुनः जीवन देते हैं और कहते हैं कि "हिमालय की यह जगह मेरी तपस्यास्थली है, यहाँ तुम्हारे कामबाण का कोई असर नहीं होगा"। ऐसा ही हुआ, और नारद मुनि ने सोचा कि यह उनकी साधना का फल है, जिसके कारण उनमे अहंकार आ गया।

भगवान शिव ने नारद मुनि को शिक्षा देने के लिए अपनी माया से एक राज्य रचा जहाँ के राजा की एक सुन्दर कन्या थी। नारद मुनि के आने पर राजा ने नारद मुनि से आशीर्वाद दिलवाने के लिए अपनी कन्या को बुलाया। राजा की अति सुंदरी कन्या को देखकर नारद मुनि अत्यंत आकर्षित हो गए और राजा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। यह सुन्दर कन्या के प्रति नारद मुनि का आकर्षण माया की मार थी। नारद मुनि का प्रस्ताव सुनकर राजा ने विनम्रता पूर्वक मुनि से स्वयंवर में पधारने हेतु आग्रह किया। इसलिए नारदमुनि ने वैकुण्ठ में जाकर भगवान हरि से कहा कि उनको "हरि" जैसा ही शरीर मिले, क्योंकि उनको उस राजकुमारी से विवाह करना है। भगवान तो अन्तर्यामी हैं। उन्होंने पूरी घटना को समझ लिया कि किस तरह शिवजी ने नारद मुनि का अहंकार समाप्त करने हेतु माया रचायी है और "तथास्तु" कह दिया। नारद मुनि ने देखा की उनका शरीर भगवान विष्णु जैसा

ही बहुत सुन्दर हो गया हैं और वह स्वंयवर में जा बैठे। जैसे ही राजकुमारी उनके निकट आई नारद मुनि का चेहरा देखकर मुंह बनाया और तुरंत दूसरे विवाह–प्रार्थी राजकुमारों के पास चली गयी।

नारद मुनि ने सभा त्याग दी और उन्होंने अपना मुंह दर्पण में देखा तो वे स्वयं ही चकित रह गए, क्योंकि उनका मुंह बन्दर का सा था। "हरि" का एक अन्य अर्थ बन्दर भी होता है। नारद मुनि बहुत क्रोधित हुए कि भगवान ने उनके साथ इतना बड़ा उपहास क्यों किया, शरीर तो विष्णु जैसा दिया पर मुंह बन्दर जैसा। यह सोचकर वह भगवान विष्णु के पास गए। राजकुमारी को खोकर वह अत्यंत दुखी हो चुके थे, इसलिए दुःख और क्रोध में उन्होंने भगवान विष्णु को श्राप दे दिया कि उनके कारण जो विरह नारद मुनि सह रहे हैं, वही विरह उनको भी मिलेगा बाद में उनको अनुभव हुआ कि यह श्राप देकर उन्होंने गलती की। परन्तु भगवान नारायण ने उनको कहा कि उनकी लीला से ही सब कुछ हो रहा है इसलिए नारद मुनि दुखी न हों। नारद मुनि का राजकुमारी के प्रति आकर्षण माया थी और जिसके फलस्वरूप उनको दुखों का सामना करना पड़ा।

नारद मुनि की माया से भेंटः

एक बार नारद मुनि भगवान नारायण के पास पहुंचे यह जानने के लिए कि माया और इनकी शक्ति क्या है? भगवान नारायण ने नारद मुनि के सामने प्रस्ताव रखा कि

वह दोनों पैदल चलते–चलते इसके बारे में चर्चा करेंगे। थोड़ी दूर जाने पर एक बहुत सुन्दर जगह आयी जो प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण थी। थोड़ा आगे जाने पर नारद मुनि को बहुत प्यास लगी। तब उन्होंने भगवान से पूछा कि आस–पास कहीं पानी मिलेगा क्या? भगवान ने कहा कि पास ही एक नदी है, वह वहाँ पानी पीकर आयें। तब तक भगवान उनकी प्रतीक्षा करेंगे। नारद मुनि चले गए और नदी से जैसे ही पानी पीने लगे, पीछे से एक व्यक्ति ने आवाज दी और नारद मुनि से आग्रह किया कि वे उनकी कुटिया में आने की कृपा करें और आराम से स्वच्छ पानी पिएं। नारद मुनि ने सोचा आराम से छाँव में बैठकर स्वच्छ और शीतल जल पीना उत्तम रहेगा।

नारद मुनि उस व्यक्ति के साथ चले गए। उसने नारद मुनि का स–सम्मान स्वागत किया और अपनी युवा पुत्री को नारद मुनि का ध्यान रखने के लिए बोलकर मुनि के लिए कुछ फल लाने के लिए वन चला गया। उसकी बेटी अत्यंत सुन्दर थी, जिससे नारद मुनि आकृष्ट हुए और बाद में उसके पिता के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव सुनकर पिता अत्यंत प्रसन्न हुए और जल्द ही नारद मुनि के साथ अपनी पुत्री का विवाह करा दिया। अब मुनि उनके घर पर ही रहने लगे और खेती– बाड़ी और गो–पालन आदि में ससुर की सहायता करने लगे। वह भूल गए कि भगवान नारायण उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यहाँ तक कि वह वीणा बजाकर नारायण का नाम कीर्तन करना भी भूल

गए। नारद जी की पत्नी ने समय आने पर एक पुत्र को जन्म दिया।

एक दिन दोनों पति–पत्नी घर के अन्दर कुछ काम में व्यस्त थे और पुत्र बाहर खेल रहा था। अकस्मात् ऐसा शब्द हुआ जैसे कि कोई नदी में गिर गया हो। नारद मुनि की पत्नी भागकर देखने गयी, और थोड़ी देर में नारद मुनि को फिर से ऐसा ही शब्द आया जैसे कोई नदी में गिर गया हो। तब नारद मुनि बाहर जाकर देखते हैं कि पत्नी और पुत्र दोनों पानी में गिर गए हैं।। पत्नी को बचाने के लिए नारद मुनि अपनी वीणा से पत्नी के बाल पकड़ने की कोशिश करने लगे परन्तु उनका पाँव भी फिसल गया और वह भी पानी में गिर गए। पानी ज्यादा था तो वे भी डूबने लगे। तब नारद मुनि जोर–जोर से पुकारने लगे "नारायण" "नारायण",। तभी नारद मुनि ने देखा कि वे वहीं खड़े हैं जहाँ पानी पीने आये थे और भगवान नारायण भी उनके निकट थे। तब नारद मुनि को समझ आया कि माया की शक्ति कितनी शक्तिशाली हैं है।

भगवान ने नारद मुनि को बताया कि किस तरह नारद मुनि सिर्फ पानी पीने गए, पर उस व्यक्ति के घर जाकर विवाह किया और भगवान को ही भूल गए। इसी प्रकार अपनी इन्द्रिय–तृप्ति की इच्छा रखने वाला जीव भगवान को भूल जाता है और मोह–माया के जाल में आ जाता है। जिस तरह पानी में डूबते समय नारद मुनि को भगवान

की याद आयी, वैसे ही मायादेवी जब जीवो को दुःख देती हैं, तब जीव को भी भगवान याद आते हैं। इस तरह दण्ड दे–देकर मायादेवी जीवों को बाध्य करतीं हैं कि वह कृष्ण–उन्मुख हो जाएं।

जमदग्नि मुनि की पत्नी रेणुकाः

एक समय परशुराम की माँ रेणुका गंगा में पानी भरने के लिए गयी। वहां उसने गन्धर्वों के राजा चित्ररथ को कुछ अप्सराओं के साथ जल विहार करते हुए देखा। चित्ररथ अत्यंत सुन्दर थे तथा कमलपुष्पों की मालायें पहने थे। रेणुका का चित्त चित्ररथ की ओर आकर्षित हो गया और उन्हें देखते–देखते वह बिलकुल भूल गयी कि वह जल भरने वहां आई है। आश्रम में जल के बिना रेणुका के पति जमदग्नि का यज्ञ रुका हुआ था। अन्ततः बहुत लम्बे समय के पश्चात् जब रेणुका ध्यान अवस्था से बाहर आई तो उनका मन अपने पति के क्रोध का स्मरण करके भयभीत होने लगा। तब वह आश्रम जाकर अपने पति के सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हुई। ऋषि को सब पता चल चुका था। उन्होंने अपने चारों पुत्रों को आदेश दिया, "इस पापिन का वध कर दो।" उनके पुत्रों ने पिता की आज्ञा नहीं मानी। ऋषि अपने पुत्रों द्वारा उनकी आज्ञा की अवहेलना देखकर क्रोधित हो उठे।

उस समय उनके सबसे छोटे पुत्र परशुराम वहाँ नहीं थे। जब परशुराम घर लौटे तो जगदग्नि ने अपने छोटे पुत्र

परशुराम को बोला कि अपनी माता और भाइयों का वध कर दे। परशुराम ने सबका शिरोच्छेद कर दिया। पिता बहुत प्रसन्न हो गए और परशुराम को वर मांगने को कहा। परशुराम ने कहा, "मुझे दो वर दें – माता और भाइयों को पुनः जीवित कर दें और उनको जो भी घटित हुआ उसका स्मरण न रहे।" जमदग्नि ने दोनों वर प्रदान किये। यहाँ हम देखते हैं कि माता रेणुका का गन्धर्व की सुन्दरता को देखकर आकर्षित होना माया थी। इसलिए उनको अपने पुत्र द्वारा ही मृत्यु के मुख पर जाना पड़ा। यही माया की मार थी। परन्तु परशुराम जो कि स्वयं विष्णु के अवतार हैं, उनकी दया से वह पुनः जीवित हो उठी।

स्वर्ग के राजा इन्द्र :

इंद्र को अपने गुरु ब्रहस्पति के श्राप से मृत्युलोक में सूअर का शरीर प्राप्त हुआ। इस शरीर के प्रभाव से वह पूर्ण भोग करने लग गए। कितने वर्ष बीत गए अपने बच्चों और परिवार के साथ उन्हें पता ही नहीं चला। ब्रह्मा ने देखा कि इंद्र पद तो खाली है। ब्रह्माजी इन्द्र को लेने के लिए मृत्युलोक गए। इन्द्र ने स्वर्ग जाने से मना कर दिया और कहा, "मेरी कितनी अच्छी सूअरनी पत्नी है, कितने अच्छे बच्चे हैं, और कीचड़ में रहने में कितना आनंद है, विष्ठा में कितना स्वाद है। मैं यहाँ भोग करता हूँ अपने परिवार के साथ सुखी हूँ, मुझे इन्द्र का पद नहीं चाहिए।" ब्रह्माजी ने उन्हें समझाया कि इन्द्रपद और सूअर योनी में

क्या भेद है। तब भी इन्द्र ने मना कर दिया। यही माया है। कहाँ इन्द्र का पद और कहाँ सूअर का जीवन ! पर माया में पड़कर व्यक्ति इन दोनों में भी भेद नहीं कर पाता। सूअर कचरे के तालाब में रहकर सोचता है कि कितना अच्छा स्थान है। वह मल खाता है, और सोचता है कितना अच्छा भोजन है। ऐसा दूषित जीवन जीकर भी वह अपने परिवार की माया में सुख समझने लगता है। जिस तरह भौतिकतावादी व्यक्ति माया की मार खा खाकर भी सोचता है कि इन्द्रिय तृप्ति में कितना सुख है ! इसी भ्रम के कारण जन्म–जन्मान्तर तक जीव भौतिक संसारःपी दलदल में फंसकर दुःख भोगता रहता है। इन्द्र की यह स्थिति देखकर ब्रह्मा ने सूअर के सर को काट दिया और इन्द्र को अपने साथ स्वर्ग ले गए।

विश्वामित्र मुनि :

विश्वामित्र मुनि क्षत्रिय राजा थे। एक दिन वह युद्ध से आ रहे थे तब वषिष्ठ जी के आश्रम में विश्राम करने के लिए रुके। वषिष्ठ जी ने राजा और उनके साथियों का बहुत आदर सत्कार किया। विश्वामित्र बहुत आश्चर्यचकित हो गए कि एक ऋषि हो कर इतना सब कुछ प्रबंध कैसे किया? उनके सैनिको ने बताया कि वषिष्ठ जी के पास एक कामधेनु गाय है। विश्वामित्र ने उनसे गाय मांगी। वषिष्ठ जी ने मना कर दिया, "यह तो मेरी पुत्री जैसी है, मैं कैसे दे सकता हूँ"। विश्वामित्र ने वषिष्ठ मुनि से युद्ध

किया और युद्ध में हार गए और अपमानित हुए। उन्होंने सोचा कि मैं क्षत्रिय होकर एक ब्राह्मण से हार गया, मैं भी ऋषि बनूँगा। तत्पश्चात उन्होंने बहुत तपस्या की और क्षत्रिय से ब्राह्मण बने, फिर ऋषि बने और फिर महार्षि बन गए। ब्रह्मर्षि बनने के लिए वह पुनः वन में तपस्या करने लगे।

इन्द्र ने उनकी तपस्या को भंग करने हेतु अप्सरा मेनका को भेजा। मेनका के आने की आहट से मुनि की आँख खुलीं। मेनका अतीव सुंदरी थी। विश्वामित्र मुनि उनकी सुन्दरता से आकर्षित हो गए और उन्होंने मेनका से विवाह कर लिया। यही माया की मार है जो विश्वामित्र मुनि पर अप्सरा के रूप में आई थी। अप्सरा रुपि माया के प्रभाव से मुनि की तपस्या भंग हुई और उन्होंने संसार में प्रवेश करना उत्तम समझा जिससे वह इन्द्रिय–सुख भोग कर पाए। उन दोनों से एक सुन्दर पुत्री शकुन्तला का जन्म हुआ। शकुन्तला के जन्म के बाद मेनका स्वर्गलोक चली गयी। मेनका के जाने के बाद विश्वमित्र मुनि को समझ आया कि किस प्रकार वह माया के आक्रमण से खुद को बचा नहीं पाए और अपने लक्ष्य से भटक गए।

अजामिल :

अजामिल एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण का पुत्र था। बचपन से ही बहुत धार्मिक था। पिता की यज्ञ आदि में सहायता करता था। एक दिन उसके पिता ने यज्ञ के लिए उसे

जंगल से लकड़ी लाने के लिए भेजा। उसने जंगल में एक वैश्या और एक शूद्र को आलिंगन करते हुए देखा। दोनों ने मदिरा पान कर रखा था। वह वैश्या के प्रति आकर्षित हो गया। वह उससे इतना प्रभावित हो गया कि उसका ध्यान हमेशा वैश्या के ऊपर ही रहने लगा। वह एक दिन उसी वैश्या को अपने घर ले आया और अपनी युवा और सुन्दर पत्नी, परिवार सब कुछ छोड़ दिया और वैश्या के साथ रहने लगा।

वैश्या और उसकी संतानों का पालन करने के लिए अजामिल चोरी–डकैती करने लगा। इस तरह वैश्या के प्रति अजामिल का आकर्षण माया थी। जिसके कारण उसका पवित्र जीवन छूट गया और वह पापकर्म में प्रवृत्त हो गया। पूजा–पाठ और भगवान की सेवा करके वह एक सरल जीवन बिता रहा था जिससे घर का पालन–पोषण भी अनायास ही हो जाता था। परन्तु अब धन प्राप्ति करने के लिए, चोरी–डकैती के लिए, उसको कई–कई दिन तक दूर तक जाना पड़ता और कठोर श्रम करना पड़ता।

ऐसे ही अनेक वर्ष व्यतीत हो गए। एक बार अजामिल के गांव में कुछ वैष्णव आये, जिनको अजामिल की गर्भवती पत्नी ने भोजन कराया। उन ब्राह्मणों ने उसको सलाह दी कि वह अपने जन्म लेने वाले पुत्र का नाम नारायण रखे। अतएव उसने अपने सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण रखा। अपने छोटे पुत्र से उसको अत्यधिक प्रेम था। मृत्यु

के समय जब यमदूत उसे लेने आये तो वह डर गया। तब वह नारायण–नारायण करके अपने छोटे पुत्र को पुकारने लगा। बहुत रोते हुए जैसे ही उसने नारायण–नारायण नाम पुकारा विष्णुदूत आ गए। तब विष्णुदूतों ने यमदूतों को बोला ''इसने नारायण को बुलाया है, चाहे कैसे भी, इसे आप नहीं ले जा सकते।'' अजामिल के प्राण बच गए। तत्पश्चात उसने अपना शेष जीवन हरिद्वार जाकर भगवान की भक्ति की और भगवद् धाम को प्राप्त हुआ। वैष्णवों की कृपा से अजामिल का उद्धार हुआ। यदि वह अपने छोटे पुत्र का नाम नारायण नहीं रखता तो मृत्यु के समय वह नारायण नाम नहीं ले पाता और यमदूत उसको नरक ले जाते। परन्तु नारायण नाम स्वयं भगवान का नाम होने के कारण उसकी रक्षा हुई। इस तरह कृष्ण का नाम हमें माया से बचा सकता है।

तृतीय अध्याय :

व्यवहारिक उदाहरण

जब कोई भी जीवात्मा नया शरीर प्राप्ति हेतु माता के गर्भ में रहता है तो गर्भ में भी वह माया की मार खाता है। कपिल मुनि माता देवहूति को बताते हैं कि किस तरह से जीवात्मा असहाय अवस्था में माता के गर्भ में रहता है, और मल मूत्र के कीड़े उसको काट–काटकर दर्द देते हैं, जिससे वह बार–बार मूर्छित हो जाता है। माता कुछ तीखा खाए तो बच्चे का शरीर जलता है। इस तरह जीवात्मा नौ महीने तक एक अन्धकार से घिरे हुए थैले में पाँव ऊपर और सर नीचे, ऐसी अवस्था में रहने के बाद जब जन्म लेता है तब भी उसे समय बहुत कष्ट होता है। कष्ट के कारण वह बेहोश हो जाता है, और बाद में रोने लगता है।

चार –पाँच साल का होने पर उसको विघालय भेजा जाता है। आजकल की शिक्षा पद्धति ऐसी है कि स्कूल में इतना होमवर्क देते हैं, पढ़ाई को बच्चो पर इतना लाद देते हैं कि बच्चो के पास खेलने कूदने का, बचपन के आनन्द लेने का कोई समय ही नहीं होता। बेचारे बच्चों को स्कूल में पूरा दिन पढ़ने के बाद भी , माता–पिता ट्यूशन/कोचिंग

भेजते हैं। ट्यूशन से आने के बाद भी माता–पिता रात में बच्चों को पढ़ाने बैठ जाते हैं और होमवर्क कराते हैं।

वर्तमान समय में बच्चो को कोई आध्यात्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। कोई भी स्कूल, संस्थान, विश्ववि।ालय यह नहीं सिखाता कि हम आत्मा हैं, शरीर नहीं। आत्मा भगवान श्रीकृष्ण का अंश है, इसलिए कृष्ण की सेवा करो। यह अमूल्य बातें कोई भी नहीं सिखाता। फलस्वरूप माता–पिता से बच्चों को यही सीखने को मिलता है कि सफलता मतलब बड़ी गाड़ी, बड़ा घर, सुन्दर पत्नी/पति, बैंक–बैलेंस और दोस्तों के साथ पार्टी। इसलिए यह घटनायें सुनने को मिलतीं हैं कि परीक्षा का परिणाम खराब आने पर परीक्षार्थी ने आत्महत्या कर ली, या अच्छे नंबर लाने के पश्चात् भी नौकरी न मिलने पर आत्महत्या लगा ली इत्यादि।

बचपन से ही भौतिक सफलता के बारे में सुन सुनकर लोग भौतिक सफलता प्राप्त करने के पीछे इतने पागल हो जाते हैं कि यह समझ ही नहीं पाते कि असली सफलता तो आनंदमय जीवन है, जो केवल भगवान श्रीकृष्ण की सेवा से ही मिल सकता है। इसी अज्ञानता के कारण माया उन लोगों को भगाती रहती है और वह भागते रहते हैं। पहले स्कूल समाप्त करने की चिंता, तत्पश्चात कॉलेज, नौकरी, विवाह, बच्चे, बच्चों की पढ़ाई, उनके विवाह, इन्हीं सब

में माया की मार खाते हुए अन्ततः मृत्यु रूपी काल सर्प उनको खा जाता है।

माया कृष्ण– विमुख जीवों को विभिन्न प्रकार से दुःख देती है, जैसे की परीक्षा में आशा के अनुरूप रिजल्ट नहीं आया तो दुःख, नौकरी में वेतन कम होने का दुःख, कार्यालय में अधिकारी के व्यवहार से दुःख, नौकरी में प्रमोशन नहीं होने का दुःख, अपने मनपसंद व्यक्ति से विवाह न होने का दुःख, विवाह हो गया पर पति या पत्नी से नहीं बनने के कारण दुःख, प्रेम–विवाह होने पर भी विवाह टूट जाने से दुःख, विवाह निभ गया पर बच्चा नही होने का दुःख, बच्चा हुआ पर नालायक निकला इसका दुःख, बच्चों की पढ़ाई ठीक नहीं चल रही यह दुःख! इस प्रकार माया अनेक दुःख देती रहती है। इसके अलावा अपने शरीर की बीमारी, परिवार के किसी सदस्य की बीमारी, या किसी ने खो दिया, उसका भी दुःख जीवो को सताता रहता है। हर समय जीवो को भय रहता है कि कहीं कोई उसे ठग न ले, संपत्ति न हर ले, या घर के किसी सदस्य को खो न दें, इत्यादि।

विवाह, विच्छेद होने पर पति और पत्नी दोनों को ही बड़ा दुःख होता है। मानसिक शांति पूर्णतया नष्ट हो जाती है। सदा एक दूसरे को दोषारोपण करना, ऊंचे स्वर में झगड़ा करना, न्यायालय में केस करना, न्यायालय में समय, शक्ति और धन नष्ट करना। दोनों में इस तरह

की लड़ाई के कारण बच्चों को भी दुःख होता है। बच्चे साधारणतः माता और–पिता दोनों के ही साथ रहना चाहते हैं, पर माता–पिता के विवाह–विच्छेद के कारण यह संभव नहीं हो पाता। जिसका दुःख उन्हें हमेशा लगा रहता है। पति–पत्नी अदालत में बच्चो को लेकर खींचातानी करते हैं कि बच्चा किसके साथ रहेगा। कभी –कभी तो ऐसा देखा जाता है कि माता–पिता में से कोई भी बच्चों को नहीं रखना चाहते। स्त्री को समाज से भी कई दुःख होते हैं, जैसे कि लोगों की अनमोल बातें सुनना, शारिरिक व मानसिक अत्याचार और विवाह विच्छेद का कारण स्त्री को मानना, इत्यादि।

ऐसी भी सत्य घटनाऐं है जिसमें बहू घर लाने के बाद बहू की सास से लड़ाई होती रहती है। दिन–प्रतिदिन सास बहू की लड़ाई से घर में अशांति फैल जाती है। कभी–कभी ससुर से भी बहू के झगड़े के कारण बहू दहेज का सत्य–असत्य आरोप अदालत में डाल देती है। जिसके कारण ससुराल वालों को पुलिस पकड़ के ले जाती है, कारागार के दण्ड के साथ–साथ ही बहुत सारा धन दण्ड के रूप में देना पड़ता है। यह सब माया की मार है।

अगर कोई ब्रह्मचारी रहकर भगवान की सेवा करे तो यह सब दुःख नहीं आते यदि विवाह हो गया तो तालमेल बनाकर चलें, विवाह–विच्छेद न करें, जो मिल रहा है उसमें संतुष्ट रहकर भगवद्–भक्ति में मन को लगायें,

तो माया की मार नहीं पड़ती और शांति प्राप्त होती है। सुख–शांति के लिए और माया से बचने के लिए थोड़ा सा इन्द्रियों पर काबू करने पर माया चली जाती है। जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है उन्होंने सारा जगत जीत लिया।

राजा सिकंदर जब पूरे विश्व को जीतकर अपने देश वापस जा रहा था तो पेड़ के नीचे बैठे एक साधू को देखा और आश्चर्य चकित हुआ। उसने कभी किसी साधू को नहीं देखा था। इसलिए अपने देश के लोगो को दिखाने के लिए साधू को साथ चलने को कहा। साधू ने मना किया, तब सिकंदर ने गुस्से से बोला "तुम जानते भी हो मैं कौन हूँ"? साधू ने उत्तर दिया, "तू मेरे दासों का दास है"। सिकंदर ने सोचा कि ये साधू पागल है ! सिकंदर ने पूछा, "मैंने सम्पूर्ण विश्व को जीता, मैं तुम्हारा दास कैसे"? तब साधू ने कहा, "तूने पूरे विश्व को जीता पर अपनी इन्द्रियों का दास ही बना रहा, और मैंने अपनी इन्द्रियों को जीता।" इसलिए इन्द्रियों को जीतनेवाला हर परिस्थिति में सुखी रहता है।

भौतिक संसार में अनेक प्रकार का दुःख माया देती रहती है। कॉलेज में लड़का–लड़की में रजोगुण के प्रभाव से माया आकर्षण पैदा करती है। तदोपरान्त झगड़ा, धोखा, सम्बन्ध–विच्छेद का दुःख होता है। कभी रास्ते से जा रहे हैं तो लुटेरों ने लूट लिया, या किसी का बलात्कार हो गया, या पथ दुर्घटना में किसी ने पैर खोया, हाथ टूट

गया, इत्यादि भी बड़ा दुःख देता है। इतना ही नहीं, शासन को टैक्स देने में, या पति या पत्नी सारा धन लेकर चले जाए या भाई–भाई में जमीन को लेकर लड़ाई, न्यायालय में लड़ते समय पैसा और शक्ति की हानि, इत्यादि अनेक दुखों से मायादेवी अर्थात दुर्गादेवी जीवों को जर्जरित करती रहती है, ताकि जीव कृष्ण उन्मुख हो सके। कुछ लोगों को तो दोनों समय का खाना भी नहीं मिल पाता। रास्ते में भीख मांगनी पड़ती है। कुछ लोगों को बीमार होने पर डॉक्टर भी नहीं मिलता, बारिश में भीगना पड़ता है, धूप की गर्मी में तपना पड़ता है, रहने को घर नहीं होता, पहनने को कपड़ा नहीं होता, यह सभी प्रकार का दुःख इस संसार में मिलता है। कोई तन दुखी तो कोई मन दुखी।

ऐसे अनेक उदाहरण हमारे आसपास मिलते हैं जिनसे हमें बहुत कुछ सीखने को मिल सकता है। ऐसी ही एक सत्य घटना एक व्यवसायी की है जो एक बड़े शहर जाते हैं अपने भाग्य को बेहतर बनाने का स्वप्न देखकर। उनका व्यवसाय कुछ सालों में ही करोड़ों का हो गया और वह सुखपूर्वक अपनी पत्नी के साथ रहने लगे। उनका एकमात्र दुःख था कि उनकी कोई संतान नहीं थी। दोनों पति–पत्नी ने अनाथालय से एक पुत्र गोद लिया और बड़े ही प्यार से उसका लालन–पालन करने लगे। उन्होंने अपने पुत्र को सबसे अच्छे विद्यालय और महाविद्यालय में पढ़ाया। उसने

जो भी चाहा सब कुछ दिया। बड़ा होकर बेटे ने पिता के करोड़ो का बिजनस संभाला और धोखे से उसे अपने नाम पर कर लिया। उसने पिता का धन, संपत्ति सब कुछ अपने नाम पर कर लिया। वह अपने माता–पिता का अनादर करने लगा। उनको एक छोटा सा कमरा रहने को दिया। न अच्छा खाने को देता, न अच्छा पहनने को और न ही बीमार होने पर डाक्टर को दिखाता। माता–पिता कुछ भी मांगे तो गुस्सा करता और सदैव दुर्व्यवहार करता। यही माया की मार है।

उस व्यक्ति को पुत्र न होने के कारण दुखी रहना माया है। उसने जितना पैसा अर्जन किया उससे वह संतुष्ट हो सकता था। पुत्र गोद लेने की बजाय व्यवसाय बंद करके बाकी जीवन आराम से भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में बिताकर पत्नी के साथ अटूट आनंद का अनुभव कर सकता था। अपना धन भगवान की सेवा में लगा सकता था। भक्तो की संगति, भगवान का दर्शन, सुन्दर प्रसादम, जन्माष्टमी महोत्सव, आदि का लाभ उठाकर शेष जीवन स्वतंत्रता के साथ आनंद लूट सकता था। परन्तु एक गोद लिए हुए पुत्र के मोह से उसको माया की मार खानी पड़ी और एक दुखी जीवन बिताना पड़ा।

अफ्रीका के जंगल में हाथी को भी माया के प्रलोभन से ही पकड़ा जाता है। हाथी बहुत शक्तिशाली पशु होता है।

उसको पकड़ने के लिए गड्ढा खोद कर उस गड्ढे को घास से ढक दिया जाता है। इसके बाद एक हथिनी को हाथी के आगे—आगे दौड़ाया जाता है। हथिनी से संग के लालच में हाथी उसके पीछे भागने लगता है। गड्ढे वाली जगह से हथिनी को कौशल से गड्ढे से बचाकर भगाया जाता है, और हाथी उस गड्ढे में गिर जाता है। कई दिनों तक हाथी को खाना नहीं दिया जाता जिससे वह दुर्बल हो जाता है। वह हाथी मनुष्य के वश में आ जाता है। यदि हाथी हथिनी के लालच में न आया होता तो वह स्वतंत्र रहता। ठीक वैसी ही हमारी अवस्था है। हम आत्मा हैं। भगवान श्रीकृष्ण के अंश हैं। फिर भी भौतिक इच्छा करने के कारण नाना प्रकार से हमें माया मार मारती रहती है। परन्तु अगर हम दृढ़ प्रतिज्ञ बन जाएँ और ये समझ जाएँ कि 'मनुष्य शरीर का प्रधान लक्ष्य कृष्ण की प्रेममयी भक्ति करके कृष्ण का प्रेम प्राप्त करना है', तो हम माया के चंगुल से बच सकते हैं।

पंतगा आग की ओर आकृष्ट होकर उसमें कूदकर मर जाता है। यह माया है। इसी प्रकार भौतिक सुख बहुत आकर्षक लगता है, परन्तु अंत में दुःख का कारण बन जाता है।

ऊँट जब काँटों को चबाता है तो काँटों से जीभ कटने के कारण उसका रक्त निकलता है। ऊँट सोचता है कि

कितना रसीला और स्वादिष्ट कांटा है। उसको पता ही नहीं चलता कि वह स्वयं का ही रक्त पी रहा है। ठीक वैसे ही संसार में लोग अपनी इन्द्रिय तृप्ति में लगे रहकर सोचते हैं कि कितना सुख है, पर उनको अज्ञानता के कारण पता ही नहीं चल पाता कि वह 'मनुष्य जीवन का समय नष्ट कर रहे हैं और माया के चंगुल में फंसते जा रहे हैं। मनुष्य जीवन भगवान की भक्ति के लिए मिला है', यह बात नहीं समझने के कारण मनुष्य को नाना प्रकार से माया की मार खानी पड़ती है।

धोबी कपड़ा लादने के लिए गधे का इस्तेमाल करता है। रोज सुबह धोबी एक गाजर गधे के मुंह के एक फुट आगे इस तरह तार से लटका देता है ताकि गधा एक कदम आगे चले तो गाजर भी एक कदम आगे चली जाए। गधा सोचता है थोड़ी दूर जाऊंगा तो यह गाजर खा पाउँगा। परन्तु वह गाजर ऐसे लटकाया जाता है कि गधा उस गाजर तक नहीं पहुँच पाता। अगले दिन पुनः गाजर गधे के सामने लटका देता है और मूर्ख गधा गाजर के लालच में सारा दिन बोझ ढोता रहता है। गधा दूसरे दिन पुनः सोचता है कि गाजर को प्राप्त कर लूँगा पर उसी कहानी की पुनरावृति होती रहती है। यघपि खाने को घास बहुत है पर एक गाजर के प्रति गधे की यह आसक्ति माया है।

कलियुग का मनुष्य भी दिन रात कंपनी या फैक्ट्री में काम करता है, थोड़े सुख की आशा में, परन्तु नौकरी के नाम

पर वह कड़ी मेहनत करता रहता है। वह सोचता रहता है कि प्रमोशन, बोनस, आदि मिलेगा तो मैं सुखी हो जाऊंगा, परन्तु वह कभी सुखी नहीं हो पाता। जिस पेट के लिए वह कमाता है, उसको भी ढंग से खाने को नहीं मिलता। काम का इतना दबाव रहता है कि नाश्ते के लिए समय नहीं, दोपहर खाने का पता नहीं, रात को थका–हारा घर आता है। इतना थक जाता है कि रात का आहार भी ढंग से नहीं खा पाता। यात्रा के मध्य में ही कुछ–कुछ खा लेता है। पुनः प्रातः काल से वही दिनचर्या प्रारम्भ हो जाती है। यही गधे की तरह परिश्रम मृत्यु तक चलता रहता है। इस तरह मनुष्य माया के हाथों में पुतला बनकर नाचता रहता है और मार खाता रहता है। परन्तु यदि वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करे तो जीवन बदल सकता है। यदि अपने जीवन में वह कृष्ण भक्ति के प्रति जागरूक हो जाए तो उसका जीवन आनंदमय हो सकता है।

कई परिवार मदिरा के कारण टूट जाते हैं। पति मदिरा–आसक्त है, पैसा मदिरा और जुए में लगा देता है, परिवार का ध्यान नहीं रखता। पत्नी और बच्चों को मदिरा पीकर मारता–पीटता है। एसी स्थिति में परिवार बिखर जाता है। परन्तु यदि किसी तरह वह भक्तों की संगति करने लगे तो सब बुरी आदतों से मुक्ति पा सकता है। जैसा संग वैसा रंग। भक्तों की संगति पापी से पापी व्यक्ति को भी सुखी बना सकती है। तब घर टूटने की

भी स्थिति नहीं आएगी। क्योंकि भक्त न मदिरा पीते हैं न जुआ खेलते हैं। भक्तो की संगति में आम व्यक्ति भी भक्त बन जाते हैं। इसलिए अगर हम समाज को बुरे प्रभावों से बचाना चाहते हैं, तो हमारे आस पास सभी को कृष्ण भक्ति का प्रचार करना होगा।

माया की मार का एक अन्य उदाहरण लेते हैं। किसी एक व्यक्ति का बहुत प्रयास के पश्चात् भी विवाह नहीं हो पाया। वह चालीस वर्ष का हो गया। फिर किसी तरह उसका विवाह हुआ। पाँच साल में ही पत्नी से विवाह–विच्छेद हो गया। उस पर दहेज का केस चला, मार–पीट का आरोप लगा। इस तरह से पुनः वह व्यक्ति परेशान रहने लगा। यदि विवाह–विच्छेद नहीं हुआ तो भी ऐसी कई घटनाएँ हैं जहाँ पत्नी बाहर सम्बन्ध बनाती है, जो पति के दुःख का कारण बन जाता है। पत्नी पति को मार देती है, सारी संपत्ति ले लेती है, सास–ससुर के साथ नौकरों सा बर्ताव करती है इत्यादि। इसी प्रकार पति विवाह–इतर सम्बंध किसी और के साथ बना लेता है। यह भी संपूर्ण परिवार के लिए अत्यंत दुख का कारण बनता है। यह सब माया की मार है।

कभी कभी भक्तों को भी माया के कारण दुर्घटना का सामना करना पड़ता है। जैसे एक भक्त रोज ६४ माला करते, शास्त्रों का अध्ययन करते तथा साधुओं का संग करते। एक दिन वह जल्दी परिक्रमा लगाने के चक्कर में

तीव्र गति से स्कूटर चलाकर जा रहे थे। हाईवे पर बड़े ट्रक से दुर्धटना हो गयी और हाथ पाँव से पंगु हो गए। वह चाहते तो पैदल परिक्रमा कर सकते थे या शान्ति से स्कूटर चला सकते थे। व्यग्रता और अनावश्यक शीध्रता भी माया की मार है।

यह सत्य घटना है कि एक ब्राह्मण की लड़की जो भगवान के प्रति श्रद्धालु और शाकाहारी है, शहर में पढ़ने जाती है वह किसी लड़के के चक्कर में आ जाती है, जिससे उसकी पढ़ाई खराब हो जाती है। वह घर से भागकर विवाह कर लेती है। न चाहते हुए भी उसे मांस बनाना और खाना पड़ता है। पति नशा करता है, सास ससुर भी खरी खोटी सुनाते हैं। लड़ाई झगड़े का प्रतिदिन सामना करना पड़ता है। बहस करने पर पति मारता है। घर में तनाव बढ़ जाता है। पति का घर से बाहर किसी और स्त्री से सम्बन्ध हो जाता है। और इस तरह उसका जीवन दुखमय हो जाता है। यदि वह माया के पाश में न आती और अपनी बुद्धि से काम लेती तो कोई मांस खाने वाले, नशा करने वाले पुरुष का संग न करती। अपनी पढ़ाई करती और भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करती। भक्त लडकियों की संगति करती तो कभी ऐसा दुखमय दिन नहीं देखना पड़ता।

पूरे विश्व में सात सौ से भी ज्यादा इस्कॉन मंदिर हैं, जहाँ युवाओं के लिए विशेष प्रवचन होते हैं। कोई भी हर रविवार को भक्तों की संगति के लिए भागवतम् और

भगवदगीता के प्रवचन सुनने के लिए जा सकता है। बाद में स्वादिष्ट प्रसादम पा सकता है। यदि हर युवा (लड़का और लड़की) भक्ति की ओर अग्रसर हो जाए तो वह जीवन में गलत निर्णय लेने से बच सकता है। और एक आनंदमय जीवन बिता सकता है।

इस संसार को गीता में श्रीकृष्ण ने "अनित्यं असुखं लोकं" और "दुखालयम अशाश्वतं" कहा है। अर्थात् यह संसार क्षणिक है और दुःख से भरा पड़ा है। यहाँ सुख नहीं है। इसलिए भौतिक संसार में सुख की आशा करना पत्थर से तेल निकालने जैसा है। कोई यदि पहाड़ के सारे पत्थर भी पीस ले, एक बूंद तेल नहीं निकाल सकता। फिर भी कलियुग में मनुष्य भगवान कृष्ण के उपदेशों का पालन नहीं करते और इसलिए दुखी रहते हैं।

माया के तीनों गुणों के जंजीरों में जकड़ा हुआ जीव मांसाहार, अवैध यौन सम्बन्ध, मदिरा पान, कोई और नशा करना और जुआ खेलना आदि पाप कार्यों का सहारा लेता है। जिसकी वजह से उसकी बुद्धि अशुद्ध हो जाती है और अज्ञानता के गहन अन्धकार में प्रवेश कर जाती है। इसी कारण से अनेक बीमारी और हताशा आदि का दुःख भोगना पड़ता है। अवैध यौन सम्बन्ध के कारण पत्नी से विलग होना, समाज से तिरस्कृत होना, बलात्कार का आरोप और न्यायालय में वर्षों तक केस लड़ना,

इत्यादि। उसे जेल जाना आदि दुःखदाई व अपमानजनक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। यदि कोई जुआ और मदिरा का आश्रय ले चुका है तो उसे धन का अपव्यय मार–पीट, धोखा, घर में कलह, इत्यादि नाना प्रकार के दुख सहने पड़ते हैं।

भौतिक जगत में अनियंत्रित व अवैध स्त्री–पुरुष संबंध तथा धन–लोलुपता माया का स्वरूप है। इन्हीं की प्राप्ति में जीव लगा रहता है और वापस भगवद् धाम जाने का सुनहरा अवसर खो बैठता है।

माया की मार से बचने की एक ही महा–औषधि है– गुरु की सेवा और शरणागति। यह हमें सदैव के लिए सांसारिक दुखों से मुक्ति दिला सकती है। विशेषतः हरे कृष्ण महामंत्र–''हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'' का जप माया से मुक्ति का रामबाण उपचार है।

चौथा अध्यायः

माया से कैसे बचा जाए

माया से बचने के कई उपाय हैं, परन्तु सबसे प्रमुख और सरल उपायों की चर्चा यहाँ की गयी है। यह इस प्रकार हैं:

१. गुरु की शरणागति
२. भगवान श्रीकृष्ण की शरणागति
३. शास्त्रों का आश्रय
४. साधु संग
५. हरिनाम जप

१. गुरु की शरणागतिः

कलियुग के मनुष्य नितांत भौतिकतावादी हैं और इन्द्रिय तृप्ति ही उनका प्रधान लक्ष्य है। इसलिए ऐसे मनुष्य भी माया से कैसे बच सकते हैं, यह सवाल राजा निमि ने श्रीप्रबुद्ध से पूछा।

श्रीराजोवाच
यथैतामैश्वरिं मायां दुस्तराम्कृतात्मभिः ।
तरन्त्यजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ।।

अनुवादः— राजा निमि ने कहा, "हे आकर्षण, कृपया यह बतलायें कि एक मूर्ख भौतिकतावादी भी आसानी से भगवान की उस माया को किस तरह पार कर सकता है जो उन लोगों के लिए सदैव दुर्लभ है और जिन्हें अपने ऊपर संयम नहीं होता।"

(भा. ११.३.१७)

श्री प्रभुद्ध इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि —

तस्माद् गुरुं प्रप ोत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्।।२१।।

अनुवादः अतएव जो व्यक्ति गंभीरतापूर्वक असली सुख की इच्छा रखता हो, उसे प्रामाणिक गुरु की खोज करनी चाहिए। प्रामाणिक गुरु की योग्यता यह होती है कि वह विचार—विमर्श द्वारा शास्त्रों के निष्कर्षों से अवगत हो चुका होता है और इन निष्कर्षों के विषय में अन्यों को आश्वस्त करने में सक्षम होता है। ऐसे महापुरुष, जिन्होंने समस्त भौतिक धारणाओं को त्यागकर भगवान की शरण ग्रहण कर ली है, उन्हें प्रामाणिक गुरु मानना चाहिए।

(भा. ११.३.२१)

श्री प्रबुद्ध हमें उपदेश देते हैं कि व्यक्ति को माया से मुक्ति और सच्चा सुख, शान्ति और आनंद चाहिए तो सबसे पहले गंभीरता पूर्वक प्रामाणिक गुरु की शरण में जाना चाहिए। प्रामाणिक गुरु की और शिष्य की योग्यताएं भी इस श्लोक में बतायी गयी हैं।

प्रामाणिक गुरु कृष्ण तत्व को जानते हैं। वह शास्त्र का सही ज्ञान रखते हैं। इसलिए वह सैद्धान्तिक होने के साथ साथ व्यवहारिक भी होते हैं। वह गुरु परंपरा से यह ज्ञान प्राप्त करते हैं, इसलिए उनका आचार, विचार और प्रचार एक समान होता है। अपने आचरण द्वारा वह दूसरों का पथ–प्रदर्शन करते हैं। वह भगवान श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि होते हैं, इसलिए श्रीकृष्ण से चली आयी गुरु परम्परा में स्थित होते हैं। व्यवहारिक होने के नाते वह शिष्यवत्सल होते हैं। वे निर्लोभी, निष्कामी और निर्मानी होते हैं।

श्रीलरूप गोस्वामी उपदेशामृत के पहले श्लोक में गुरु की योग्यता बताते हुए कहते हैं कि, ''गुरु का क्रोध, वाणी, जीभ, मन, उदर और जननेंद्रिय के वेगों पर पूर्ण नियंत्रण होता है। इसलिए वह सारी पृथ्वी में शिष्य बनाने के अधिकारी होते हैं। वह भगवान श्रीकृष्ण के प्रचार में ही दिन–रात लगे रहते हैं और इस तरह बद्ध जीव को माया के जाल से बचा लेते हैं। वह करुणा के सागर और जीवों के प्रति अत्यंत दयालु होते हैं। इसलिए वह भगवान श्रीकृष्ण का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे प्रतिनिधि की शरण ग्रहण करके कोई पापी से पापी व्यक्ति भी माया से बच सकता है''।

श्रीलरूप गोस्वामी भी भक्तिरसामृतसिन्धु में यही उपदेश देते हैं कि सबसे पहले जिज्ञासु शिष्य को प्रामाणिक गुरु के पादपद्म का आश्रय लेना नितांत आवश्यक है। उनके

दिए हुए चौसठ साधनों में यह सबसे पहले चार साधन गुरु के सम्बन्ध में ही हैं। "आदो गुर्वाश्रयम" (भ.सि.१.१.७४) माया से बचने के लिए गुरु का आश्रय ही सबसे पहला साधन है।

गुरुपादाश्रयस्तस्मात कृष्णदीक्षादिशिक्षणम।
विश्रम्भेण गुरोः सेवा साधूवर्त्मानुवर्तनम।।

अनुवादः

१. प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करना

२. गुरु द्वारा दीक्षित किया जाना और उनसे भक्ति करने की विधि सीखना

३. श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा और उनके आदेशों का पालन करना तथा

४. गुरु के निर्देशन में महान आचार्यों के पदचिन्हों का अनुसरण करना।

(भ. र. सि. १.२.७४)

आगे श्रीप्रबुद्ध कहते हैं कि–

तत्र भागवतान्धर्मान्शिद्‌गुर्वात्मदैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तष्येदात्मादो हरिः।।

अनुवादः प्रामाणिक गुरु को आत्मा तथा देव मानते हुए शिष्य को चाहिए कि उनसे शुद्ध भक्ति की विधि सीखे। समस्त आत्माओं के लिए भगवान हरि अपने आपको अपने

शुद्ध भक्तों को सौंपने के लिए उद्यत रहते हैं। इसलिए शिष्य को अपने गुरु से द्वेषरहित होकर भगवान की श्रद्धापूर्वक तथा उपयुक्त विधि से सेवा करना सीखना चाहिए, जिससे वे तुष्ट होकर श्रद्धालु शिष्य को अपने आपको सौंप सकें।

(भा. ११.३.२२)

गुरु को शिष्य अपनी आत्मा और श्रीकृष्ण ही माने और उनसे शुद्ध भक्ति सीखे। श्रीकृष्ण अपने आपको शुद्ध भक्तों को सौंपने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। इसलिए हर किसी को अपने गुरु को श्रीकृष्ण ही समझना चाहिए और श्रद्धा पूर्वक तथा यथायोग्य विधि से गुरु और श्रीकृष्ण की सेवा करना सीखना चाहिए। ऐसे स्निग्ध, सरल और सेवा भावी शिष्य को गुरु अपना सब कुछ दे देते हैं।

श्रील नारदमुनि के अनुसार "यो विद्वान् स गुरुहरिः" – ऐसे महात्मा को साक्षात् कृष्ण की बाह्य अभिव्यक्ति मानना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है –

आचार्यं मां विजानीयान्नवमन्येत कर्हिचित।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ।।

अनुवादः मनुष्य को चाहिए कि आचार्य को मेरा ही स्वरुप जाने और किसी भी प्रकार से उसका अनादर नहीं करें, उसे सामान्य पुरुष समझते हुए उससे ईर्ष्या–द्वेष नहीं रखे क्योंकि वह समस्त देवताओं का प्रतिनिधि है।

(भा. ११.१७.२७)

श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती ठाकुर के अनुसार गुरु को कभी भी न तो संसारी माना जाये, न ही अपने समान स्तर पर। गुरु को सदैव भगवान के चरणकमलों की शरण में देखा जाना चाहिए। कभी भी गुरु पर यह दूसरों पर प्रभाव डालने के विचार से गुरु से निजी सेवा नहीं लेनी चाहिये और न ही उनके माध्यम से कोई भौतिक लाभ प्राप्त करना चाहिये। जो व्यक्ति वास्तव में अग्रसर होता रहता है, वह गुरु की अधिकाधिक सेवा करने के लिए उन्मुख होता है और इस तरह ऐसे शिष्य को भगवान के आनंद का अनुभव होने लगता है।

(भा. ११.३.२२ तात्पर्य)

यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अनुवादः जितनी श्रीकृष्ण पर भक्ति है उतनी ही श्रीगुरु पर होने से वैदिक शास्त्रों का सम्पूर्ण ज्ञान स्वतः उनके हृदय में प्रकाशित हो जाता है और वह महात्मा बन जाता है।

(श्वे. उ. ६.२३)

जो भी गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं, उनसे भगवान श्रीकृष्ण अत्यंत प्रसन्न होते हैं। श्रीकृष्ण चेत्य–गुरु परमात्मा के रूप में प्रत्येक जीव के हृदय में विराजमान रहते हैं। जब भी वह किसी शिष्य की एकनिष्ठ भक्ति गुरु और कृष्ण के प्रति देखते हैं, तब सारा वेद–पुराण का ज्ञान उसके हृदय में प्रकाशित कर देते हैं। जिस ज्ञान की तलवार

से हम मायारूपी अज्ञानता के जाल को काटने में समर्थ हो पाते हैं। अर्थात जितना ज्यादा हम गुरु और श्रीकृष्ण के प्रति श्रद्धा विकसित करेंगे उतनी ही जल्दी माया के बंधन से मुक्त होंगे।

भगवान श्रीकृष्ण किसी की भक्ति को सीधे स्वीकार नहीं करते बल्कि अपने प्रतिनिधि श्रीगुरु के माध्यम से स्वीकार करते हैं।

श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है,

ये में भक्तःजनाः पार्थ न में भक्तास च ते जनाः।
मद भक्तानाम च ये भक्तास ते में भक्ता–तमा मताः।।

अनुवादः जो मेरे प्रत्यक्ष भक्त हैं वह वास्तव में मेरे भक्त नहीं, वास्तव में मेरे भक्त वही हैं जो मेरे भक्तों के भक्त हैं ।
(आ.पु)

श्रीगुरु की कृपा के बगैर कृष्ण–कृपा प्राप्त करना असंभव है।

यस्य प्रसादाद् भगवत्–प्रसादो
यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि
ध्यायन् स्तुवंस् तस्य यशस् त्रि–सन्ध्यं
वन्दे गुरोः श्री–चरणारविन्दम

अनुवादः श्री गुरुदेव की कृपा से भगवान श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होती है। श्री गुरुदेव की कृपा के बिना कोई

कृष्ण–कृपा प्राप्त नही कर सकता। अतएव मुझे सदैव श्री गु:देव का स्मरण व गुणगान करना चाहिए। दिन में कम से कम तीन बार मुझे श्री गुरुदेव के चरणकमलों में सादर नमस्कार करना चाहिए

गीता में श्रीकृष्ण साक्षात अर्जुन के समक्ष खड़े होते हुए भी कहते हैं कि ज्ञानी पुरुष जो कि श्रीगुरु हैं उनकी शरण में जाओ। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं भगवान होते हुए भी अर्जुन को माया के चंगुल से छूटने के लिए गुरु के पास जाने की शिक्षा दे रहे हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।३४।।

अनुवादः तुम गुरु के पास जाकर सत्य को जानने का प्रयास करो। उनसे विनीत होकर जिज्ञासा करो और उनकी सेवा करो। स्वरुपसिद्ध व्यक्ति तुम्हे ज्ञान प्रदान कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने सत्य का दर्शन किया है।

(भ.गी. ४.३४)

श्रीकृष्ण अदीक्षित से कुछ भी सेवा, पूजा, अर्चन नहीं स्वीकार करते। इसलिए अर्चन करने से पहले गुरु की आज्ञा ली जाती है। दिव्य ज्ञान और आत्मा–परमात्मा को जानने की तीव्र इच्छा हो और मोह–माया से मुक्त होने की अभिलाषा हो, तब हमें गुरु के पास जाना चाहिए। जैसे कि हम चिकित्सक के पास तब जाते हैं जब हमें

कोई रोग होता है। हम जीवन के प्रारंभ में ही गुरु को पा सकते हैं। प्रहलाद महाराज और शुकदेव गोस्वामी ने अपनी माता के उदर में और ध्रुव महाराज ने पाँच साल की उम्र में गुरु पाए। प्रायः भारत में हर एक व्यक्ति आठ साल में दीक्षा ले लेता है। लेकिन शिष्य को अपने आपको इस योग्य बनाना होगा ताकि अपने आपको एक योग्य पात्र बना सके, और गुरु का अनुग्रह पा सकें। जिस तरह शेरनी का दूध किसी और पात्र में नहीं टिकता, पात्र में छेद हो जाता है, परन्तु स्वर्ण के पात्र में वही दूध टिक जाता है, ठीक उसी प्रकार गुरु की शरणागति के लिए और गुरु के आदेशों का यथारूप पालन करने हेतु शिष्य को भी कुछ पात्रता अर्जित करनी होती है।

श्रीप्रबुद्ध प्रामाणिक शिष्य की पात्रता बताते हुए कहते हैं कि,

शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्याय्मार्जवं ।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ।। 24।।

अनुवादः गुरु की सेवा करने के लिए शिष्य को स्वच्छता, तपस्या, सहनशीलता, मौन, वेदाध्ययन, सादगी, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा गर्मी और शीत, सुख और दुःख, जैसे द्वैतों के समक्ष समत्व सीखना चाहिए।

(भा. ११.३.२४)

श्रील जीव गोस्वामी का अभिमत है कि गुरु को शिष्य की आत्मा अर्थात प्राण समझना चाहिए, क्योंकि वास्तविक

जीवन तो प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षा दिए जाने पर ही प्रारम्भ होता है। भले ही किसी को स्वप्न में अनेक अद्‌भुत या महत्वपूर्ण प्रतीत होती हुई घटनाएँ घटती क्यों न दिखें, किन्तु असली जीवन तो तब आरम्भ होता है, जब वह जागता है। चूँकि गुरु शिष्य में आध्यात्मिक जीवन जागृत करके उसे नया जन्म देता है, इसलिए प्रामाणिक शिष्य समझ पाता है कि उसके गुरु ही उसके जीवन का आधार हैं।

(भा. ११.३.२२.तात्पर्य)

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या
दीशादपेतस्य विपर्ययोअस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैयेशं गुरुदेवतात्मा।।३७।।

अनुवादः जब जीव भगवान की बहिरंगा माया शक्ति में लीन होने के कारण अपनी पहचान भौतिक शरीर के रूप में करता है, तब भय उत्पन्न होता है। इस प्रकार जब जीव भगवान से मुख मोड़ लेता है, तो वह भगवान के दास रूप में अपनी स्वभाविक स्थिति को भूल जाता है। यह मोहने वाली भयपूर्ण दशा माया द्वारा प्रभावित होती है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को प्रामाणिक गुः के निर्देशन में भगवान की अनन्य भक्ति में लगना चाहिए। ऐसे गुः को ही अपना आराध्यदेव तथा अपना प्राणधन स्वीकार करना चाहिए।

(भा. ११.२.३७)

इस प्रकार आध्यात्मिक गुरु का आश्रय लेकर गुरु की आज्ञा पालन ही अपने जीवन का लक्ष्य मानकर जो भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति की ओर अग्रसर होता है वही माया के चंगुल से छूट सकता है।

भागवत (5.5.10–13) में भगवान् ऋषभदेव अपने पुत्रों को उपदेश देते हैं, "हे पुत्रों, तुम्हें सिद्ध गुरु अर्थात परमहंस की शरण ग्रहण करनी चाहिए। इस प्रकार तुम मुझ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान पर अपनी श्रद्धा तथा प्रेम रख पाओगे। तुम्हें इन्द्रियतृप्ति से घृणा करनी चाहिए तथा ग्रीष्म एवं शीत ऋतु के समान आनंद तथा पीड़ा की द्वैतता को सहना चाहिए। उन जीवात्माओं की कष्टमय दशा को समझने का प्रयास करो, जो स्वर्ग में भी दुखी रहती हैं। सत्य का दार्शनिक तौर पर अन्वेषण करो। फिर भक्ति के निमित्त समस्त प्रकार की तपस्या करो। इन्द्रिय–सुख के लिए प्रयत्नों का परित्याग करके ईश्वर की सेवा में लगो। भगवान की कथा का श्रवण करो और सदैव भक्तों की संगति करो। ईश्वर का कीर्तन और गुणगान करो और सभी को आध्यात्मिक स्तर पर समभाव से देखो। शत्रुता त्याग कर क्रोध तथा शोक का दमन करो। स्वयं को देह तथा घर के साथ न जोड़ते हुए शास्त्रों का अध्ययन करो। एकांत वास करो और प्राणवायु, मन तथा इन्द्रियों को पूर्णतया वश में करने का अभ्यास करो। वैदिक साहित्य अर्थात शास्त्रों पर पूर्ण श्रद्धा रखो और सदैव ब्रह्मचर्य व्रत

का पालन करो। अपने कर्तव्यों को करते हुए व्यर्थ की बातें करने से बचो। सदैव भगवान का चिंतन करते हुए सही स्त्रोत से ज्ञान प्राप्त करो। इस प्रकार उत्साह एवं धैर्यपूर्वक भक्तियोग का अभ्यास करते रहने से तुम्हारा ज्ञान बढ़ेगा और अहंकार जाता रहेगा।"

भगवान ऋषभदेव स्वयं भगवान होते हुए भी अपने पुत्रों को माया के चंगुल से छूटने के लिए गुरु के पास जाने की शिक्षा दे रहे हैं।

२. भगवान श्रीकृष्ण की शरणागतिः

श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं कि

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रप।न्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अनुवादः प्रकृति के तीन गुणों वाली मेरी इस दैवी शक्ति को पार कर पाना कठिन है। किन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे सरलता से इसे पार कर जाते हैं।

(भ. गी. ७.१४)

भगवान की माया त्रिगुणात्मक है और उसको पार करना कठिन है। परन्तु जो श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं, वह आसानी से माया को लाँघ जाते हैं। 'हरिभक्ति विलास' में भगवान श्रीकृष्ण की शरणागति का इस तरह वर्णन हुआ है–

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ।।
आत्म–निक्षेप– कार्पण्ये षड्–विधा शरणागतिः ।।६७६।।

अनुवादः शरणागति के छह विभाग यह हैं– भक्ति के अनुकूल चीजों को स्वीकार करना, प्रतिकूल चीजों का बहिष्कार करना, श्रीकृष्ण द्वारा संरक्षण पर पूर्ण विश्वास होना, भगवान को संरक्षक या स्वामी के रूप में स्वीकार करना, पूर्ण आत्मसमर्पण तथा दीनता।

(ह.भ.वि. ११.६७६)

भक्ति की अनुकूल चीजों को एक भक्त को स्वीकार करना चाहिए, जैसे कि प्रातःकाल जप करना, चार नियमों (मांसाहार न करना, अवैध यौन सम्बन्ध न करना, नशा न करना और जुआ नहीं खेलना) का पालन करना, इत्यादि। जो चीजें श्रीकृष्ण भक्ति में बाधारूप हो उनका त्याग करना। जैसे कि जरुरत से ज्यादा खाना और धन का संग्रह, किसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति के लिए आवश्यकता से ज्यादा परिश्रम करना, सांसारिक निरर्थक बातों में समय व्यय करना, जो श्रीकृष्ण भक्ति में सहायक नहीं हो उन नियमों का आग्रह रखना या जो नियम सहायक हो उनका पालन नहीं करना, अभक्तों के साथ संगति करना, भौतिक वस्तु को प्राप्त करने के लिए लोभ करना, इत्यादि। एक भक्त को ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि श्रीकृष्ण ही हमारी हर अवस्था में रक्षा और भरण–पोषण करेंगे। अपने आपको संपूर्णतया भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित करना और

विनम्रता से श्रीकृष्ण शरणागत होना, इसको शरणागति कहते हैं।

जो माया से बचना चाहते हैं उन्हें आगे श्रीप्रबुद्ध बोध देते हैं कि –

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्
विविक्तचीरवसनं संतोषं येन केनचित् ।।

अनुवादः– मनुष्य को चाहिए कि अपने आप को नित्य आत्मा के रूप में और भगवान को हर वस्तु का परम नियंता देखते हुए ध्यान करे। ध्यान में वृद्धि लाने के लिए वह एकांत स्थान में रहे और अपने घर तथा घर की सामग्री के प्रति झूठी आसक्ति को त्याग दे। नश्वर शरीर के अलंकरण को त्याग कर, मनुष्य अपने को चीथड़ों से या वृक्षों की छाल से ढके। इस तरह, उसे किसी भी भौतिक परिस्थिति में संतुष्ट रहना सीखना चाहिए।

(भा. ११.३.२५)

कृष्ण सूर्य समय माया हय अन्धकार।
याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार।।३१।।

अनुवादः कृष्ण सूर्य के समान हैं और माया अन्धकार के समान है। जहाँ कहीं सूर्य–प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं हो सकता। ज्यों ही भक्त कृष्णभावनामृत अपनाता है, त्योंही माया का अन्धकार (बहिरंगा शक्ति का प्रभाव) तुरन्त नष्ट हो जाता है।

(चै. च. २.२२.३१)

श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील सनातन गोस्वामी को उपदेश देते हैं कि किस प्रकार जीव माया के संसार में रहकर भी माया से बच सकता है। अमावस्या की रात को हर जगह घना अन्धकार छा जाता है। यदि किसी महान से महान आधुनिक वैज्ञानिक को भी बोलें कि वह कहीं एक जगह इन अंधकारों को बचा कर रखे जहां सूर्य के प्रकाश पड़ता हो। कोई कितना भी महान वैज्ञानिक क्यों न हो वह ऐसा नहीं कर पायेगा। क्योंकि सूर्य के आने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। जहॉ अन्धकार है, वहां सूर्य का प्रकाश नहीं है। यघपि किसी भी भौतिक उदाहरण से आध्यात्मिक चीजों की तुलना नहीं हो सकती, तथापि हमें समझाने के लिए शास्त्रों में ऐसे उदाहरण मिलते है। जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति में अन्धकार नहीं टिक सकता उसी प्रकार अगर हम अपने जीवन में कृष्णभावनामृत को अपनाएं तो माया का कोई अधिकार नहीं रह जाएगा। माया का मतलब ही होता है दुःख और श्रीकृष्ण का मतलब आनंद। इसलिए कृष्ण भक्ति को जीवन में उतारने मात्र से ही कोई भी व्यक्ति आनंदित हो जाता है।

"रसिक शेखर कृष्ण परम करुण"। कृष्ण परम दयालु हैं, करुणा के सागर हैं, वह लीला करने हेतु भौतिक संसार में अवतरित होते हैं। हम उन लीलाओं को स्मरण करके भगवदधाम जा सकें। जो बुद्धिमान जीव हैं, वह भगवान श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का गुण—गान करके,

नाम–संकीर्तन करके और केवल भगवान श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण शरणागत होकर स्वयं को सबसे उच्चलोक गोलोक वृन्दावन जाने के योग्य बनाते हैं। जो जीव भगवान श्रीकृष्ण द्वारा प्रदान की गई इस सुविधा को ग्रहण कर भगवदधाम जाने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं वह उस चिन्मय जगत में प्रवेश कर पाते हैं, और वहाँ के नित्य पार्षद जैसी ही अवस्था को प्राप्त करते हैं।

माया से बचने के लिए यह अनिवार्य है कि हमें भगवान श्रीकृष्ण पर पूर्ण विश्वास रखना होगा और प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करनी होगी। श्रद्धा के बिना भक्ति संभव नहीं है। जब भी इन्द्रियतृप्ति की इच्छा जागे तो शीत और गर्मी के मौसम की तरह उसको सहन करना चाहिए और अपनी इन्द्रियों को भगवान श्रीकृष्ण की सेवा में संलग्न रखना चाहिए। अल्पबुद्धि के लोग यह समझते हैं कि स्वर्ग में अपार सुख है और इस तरह स्वर्ग जाने का प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु हमें शास्त्रों का अध्ययन करके, गुरु के प्रति शरणागत होकर और प्रमाणिक भक्तों से सुनकर यह समझ जाना चाहिए कि भौतिक जगत में कहीं भी सम्पूर्ण सुख नहीं है। स्वर्ग के देवता भी असुरों के आक्रमण से दुखी रहते हैं। हमें शास्त्रों का गहन अध्ययन प्रमाणिक गुरु की अध्यक्षता में करना चाहिए। तभी हम परम सत्य को जान पायेंगे और इस तरह आध्यात्मिक ज्ञान की तलवार से मोह–मायारूपी जाल का छेदन कर सकते हैं।

हमें अपना समय इन्द्रियतृप्ति हेतु किये गए प्रयत्नों में नष्ट न करके भक्तों की संगति में और भगवान के गुणगान में लगाना चाहिए। धैर्यपूर्वक भक्ति पथ पर लगे रहने से हम अहंकार शून्य हो जायेंगे और मिथ्या अहंकार जैसे कि "मैं यह शरीर हूँ या शरीर से सम्बंधित मेरा है" इस भावना का त्याग कर देंगे। जिससे हम माया के दण्ड से सदा के लिए बच जायेंगे।

भगवान श्रीकृष्ण की दया की कोई सीमा नहीं है। जब वह देखते हैं कि जीव निरंतर माया की मार खा रहा है और बहुत दुखी है तब वह स्वयं इस धरती पर आकर उन आत्माओं के उद्धार के लिए लीला करते हैं, गीता का उपदेश देते हैं। भौतिक संसार में डूबे हुए मनुष्य के लिए वैकुण्ठ लोक की कल्पना कर पाना भी संभव नहीं है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण स्वयं आते हैं। कुछ बुद्धिमान लोग ही कृष्ण की दिव्य लीलाओं को समझ पाते हैं। जब श्रीकृष्ण यह देखते हैं कि अधिकतर जीव उनके उपदेशों को समझने में असमर्थ हैं तब वह उदार अवतार श्री चैतन्य महाप्रभु केःप में आकर तत्व को और सरलता से समझाते हैं। वह भगवान श्रीकृष्ण को पाने की सरल विधि बताते हैं जो कि हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन और जप है और स्वयं एक भक्त का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण इतने दयालु हैं कि भक्त अपनी अनन्य भक्ति से उनको जीत लेते हैं। श्रीकृष्ण की भक्ति करने

पर माया कोसों दूर चली जाती है और हमारा जीवन आनंदमय हो जाता है।

३. शास्त्रों का आश्रयः

शास्त्रों के प्रति अटूट विश्वास के साथ शास्त्रों को गहनता और विश्लेषणात्मक रूप से पढ़ना, सुनना और जीवन में उतारना चाहिए।

साधू–शास्त्र–क्रिपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।
सेई जीव निस्तरे, माया ताहारे छाड़य।।१२०।।

अनुवादः यदि कोई बद्धजीव किसी ऐसे साधु पुरुष की कृपा से कृष्णभावनाभावित हो जाता है, जो उसे शास्त्रों का उपदेश देता रहता है और उसे कृष्णभावनाभावित होने में सहायता देता है, तो वह बद्धजीव माया के पाश से मुक्त हो जाता है, क्योंकि माया उसे छोड़ देती है।

(चै. च. २.२०.१२०)

शास्त्र भगवान श्रीकृष्ण की वाणी हैं, इसलिए शास्त्र नितांत सत्य हैं। हमें शास्त्रों को यथारूप समझकर उनका पालन करना चाहिए। शास्त्रों की कृपा से हम माया के चंगुल से बच सकते हैं।

श्रुति स्मृतिपुराणादि पञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकांतिकी हरेर्भक्तिःत्पातायैव कल्पते ।।१०१।।

अनुवादः वह भगवद्भक्ति, जो उपनिषदों, पुराणों तथा नारद पंचरात्र जैसे प्रामाणिक वैदिक ग्रंथों की अवहेलना करती है,समाज में व्यर्थ ही उत्पात फैलाने वाली है।

(भ.र.सि. १.२.१०१)

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।२३।।

जो शास्त्रों के आदेशों की अवहेलना करता है और मनमाने ढंग से कार्य करता है, उसे न तो सिद्धि, न सुख और न ही परमगति की प्राप्ति हो पाती है।

(भ.गी. १६.२३)

मायामुग्ध जीवेर नाहि स्वतः कृष्णज्ञान।
जीवेरे कृपाय कैला कृष्ण वेद पुराण।।१२२।।

अनुवादः बद्धजीव स्वयं के प्रयत्न से अपनी कृष्णभावना को जागृत नहीं कर सकता। किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने अहैतुकी कृपावश वैदिक साहित्य तथा इसके पूरक पुराणों का सृजन किया है।

(चौ. च. २.२०.१२२)

भगवान श्रीकृष्ण ने जीवों पर अहैतुकी कृपा करने हेतु वेद पुराणों की रचना की ताकि जीव माया के चक्र से छूट सके। श्रीकृष्ण को भूलनेवाले जीव को भगवान कृष्ण शास्त्रों और परमात्मा के द्वारा यह ज्ञान देते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण ही परम भोक्ता हैं और बद्धजीव को माया के चंगुल से छुडाने वाले हैं।

भगवान ने श्रील व्यासदेव के रूप में वेद, पुराण, उपनिषद् आदि को साहित्य का आकार दिया। परन्तु उनको संतुष्टि नहीं हुई। कलियुग के लोगों के लिए उन्होंने महाभारत की भी रचना की। क्योंकि वह अपनी दिव्य दृष्टि से देख पा रहे थे कि किस तरह कलियुग के लोग मंदबुद्धि और दुर्भाग्य को लेकर जन्म लेंगे। उनके लिए वेद, उपनिषद् आदि को समझना संभव नहीं होगा। महाभारत का अध्ययन और अनुसरण करके वे कम से कम स्वर्ग लोक तक जा सकेंगे। परन्तु इतना करने के बाद भी वह असंतुष्ट रहे।

व्यासदेव के गुरु नारद मुनि का आगमन होता है। नारद मुनि कहते हैं कि यह वेद, उपनिषद् और पुराण आदि की रचना करके आपने बहुत गर्हित कार्य किया है, क्योंकि कलियुग के मनुष्य इन्द्रिय तृप्ति पर अधिक ध्यान देने वाले होंगे और आपकी इन रचनाओं से वह और भटक जायेंगे। वह वेदों की उन आलंकारिक भाषाओं के द्वारा आकृष्ट होंगे जो उनकी इन्द्रियतृप्ति को बढ़ावा देंगे।

नारद मुनि ने श्रील व्यासदेव को उनकी असंतुष्टि का कारण बताया,

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः।।६।।

अनुवादः हे महामुनि, यघपि आपने धार्मिक कृत्य इत्यादि चार पुरुषार्थों का विस्तार से वर्णन किया हैं, किन्तु आपने भगवान वासुदेव की महिमा का वर्णन नहीं किया है।

(भा. १.५.६)

भगवान श्रीकृष्ण की गुणानुकीर्तन के बिना कोई भी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता, मुक्ति की बात तो दूर ही है। इसलिए श्रील नारद मुनि महामुनि व्यासदेव को यह उपदेश देते हैं कि वह जनसाधारण के कल्याण के लिए एक ऐसे ग्रन्थ की रचना करे जिसमें भगवान श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, लीला, आदि का वर्णन हो।

तद्वाग्विसर्गो जनाताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः।।११।।

अनुवादः दूसरी ओर जो साहित्य असीम परमेश्वर के नाम, यश, रूपों तथा लीलाओं की दिव्य महिमा के वर्णन से पूर्ण है, वह कुछ भिन्न ही रचना है जो इस जगत की च्युत सभ्यता के अपवित्र जीवन में क्रान्ति लाने वाले दिव्य शब्दों से ओतप्रोत है। ऐसा दिव्य साहित्य, चाहे वह ठीक से न भी रचा हुआ हो, ऐसे पवित्र मनुष्यों द्वारा सुना, गाया तथा स्वीकार किया जाता है, जो नितांत निष्कपट होते हैं।

(भा. १.५.११)

इसलिए भले ही अन्य साहित्य जिसकी कितनी ही भली भांति रचना की गयी हो, वह किसी के उद्धार का कारण नहीं बन सकता। परन्तु ठीक से न रचा गया ऐसा साहित्य

जो श्रीकृष्ण की महिमा का गुणगान करता हो, वह पतित जीवात्माओं का उद्धार का कारण बन सकता है। यही अंतर है भगवान श्रीकृष्ण के ऊपर लिखे गये साहित्य और अन्य साहित्य में। आत्म–साक्षात्कार का ज्ञान अगर कृष्ण–रहित हो तो उससे कोई लाभ नहीं होता है। सकाम कर्मियों के बारे में कहना ही क्या जो सिर्फ अपने इन्द्रिय तृप्ति के लिए शास्त्रों का पालन करते हैं।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्षयाः।।१०।।

अनुवादः जो वाणी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वायुमंडल को परिशुद्ध करनेवाले भगवान की महिमा का वर्णन नहीं करती, उसे साधू पुरुष कौवे के स्थान के समान मानते हैं। चूँकि परमहंस पुरुष दिव्य लोक के वासी होते हैं, अतः उन्हें ऐसे स्थान में कोई आनंद नहीं मिलता।

(भा. 1.5.10)

नारद मुनि ने श्रील व्यासदेव से कहा कि सामान्य लोगो में भोग करने की प्रवृत्ति होती हैं, और आपने उन ग्रंथो की रचना करके एसे लोगों को और अधिक प्रोत्साहित कर दिया है। यह अत्यंत घृणित और अनुचित कार्य है। क्योंकि सामान्यतः लोग महान लोगो की बातों को मानते

हैं, और इस प्रकार व्यासदेव की बातों को प्रमाण के रूप में मानकर वे और भी ज्यादा इन्द्रिय तृप्ति करेंगे और शास्त्रों की विधि–निषेधों का भी पालन नहीं करेंगे।

नारद मुनि ने श्रील व्यासदेव को भगवान वासुदेव की महिमा का वर्णन करते हुए एक ग्रन्थ की रचना करने की सलाह दी, जो श्रीमद् भागवतम् है। इसके अध्ययन से हम माया के चंगुल से नितांत छूट सकते हैं। श्रील व्यासदेव ने समाधि में श्रीकृष्ण की दिव्य लीला का दर्शन किया और नारद मुनि के चले जाने के बाद श्रील व्यासदेव ने माया से सम्पूर्णतया छुटकारा पाने का सर्वोत्तम ग्रन्थ श्रीमद् भागवतम् की रचना की।

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।
कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः।।४३।।

अनुवादः यह भागवत पुराण सूर्य के समान तेजस्वी है और धर्म, ज्ञान आदि के साथ कृष्ण द्वारा अपने धाम चले जाने के बाद ही इसका उदय हुआ। जिन लोगों ने कलियुग में अज्ञान के गहन अन्धकार के कारण अपनी दृष्टि खो दी है, उन्हें इस पुराण से प्रकाश प्राप्त होगा।

(भा. 1.3.43)

यह भागवत पुराण ही अमल पुराण है, जिसका अध्ययन करके हम माया से पार पा सकते हैं।

४. साधु—संगः

इसके साथ—साथ हमें साधु की भी कृपा चाहिए। साधु वह है जो श्रीकृष्ण का अनन्य भक्त है, दूसरो की निंदा द्वेष, मत्सरता से रहित है, श्रीकृष्ण भजन—विज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञाता है और श्रीकृष्ण के भजन—पूजन में हमेशा प्रवृत्त रहता है। जो अपने लिए कम रख कर दूसरों को ज्यादा देता है और जो निर्लोभी, निष्कामी, निर्मानी होते हैं। ऐसे साधुओं की सेवा करने से हम माया से बच सकते हैं। साधु, शास्त्रों और गुरु की कृपा से हमें श्रीकृष्ण मिलते हैं।

साधुओं के गुण कपिल मुनि अपनी माता को बताते हैं—

तितिक्षवः काःणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ।।

अनुवादः साधु के लक्षण ये हैं कि वह सहनशील, दयालु तथा समस्त जीवों के प्रति मैत्री भावना रखता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता, वह शान्त रहता है, वह शास्त्रों का पालन करता है और उसके सारे गुण अलौकिक होते हैं। (भा. ३.२५.२१)

साधु वह है जो श्रीकृष्ण का अनन्य भक्त है। अगर ऐसे अनन्य भक्त का संग किसी को भी प्राप्त हो जाए तो वह पिशाची माया से मुक्ति पा सकता है।

काम— क्रोधेर दास हुआ तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु वैघ पाय ।

ताङ्क उपदेशं मन्त्रे पिशाची पालाय ।
कृष्णभक्ति पाय तबे कृष्ण निकटे याय ।।

अनुवादः इस तरह बद्धजीव कामवासनाओं का दास बन जाता है और जब वे वासनाएँ पूरी नहीं होती हैं तो वह क्रोध का दास बन जाता है और माया की लातें खाता रहता है। वह इस ब्रह्मांड में घूमते–घूमते दैववश यदि किसी भक्तवृंद की संगति पा लेता है, तो उनके निर्देशों और मन्त्रों से माया:पी डायन भाग जाती है। इस तरह बद्धजीव भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति के संपर्क में आता है, जिससे वह भगवान के और निकट पहुँच सकता है।

(चै. च. २.२२.१४–१५)

समस्त प्रकार के इन्द्रिय सुखों का अन्तिम परिणाम दुःख ही होता है। इन दुखों से जर्जरित जीव सुख की कामना करता है। इस कामना से विवेक और विवेक से जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यदि वह साधु– संग करता है तो उसमें धीरे–धीरे श्रद्धा का विकास होने लगता है। जिस तरह सोना अग्नि में तपाने से और हथौड़ी से पीटने पर निर्मल होता है उसी प्रकार मायाशक्ति दुर्गादेवी जीव को दुःख की हथौड़ी से पीट पीट कर शुद्ध बनाती हैं। अंत में संसारिक दुःख से बुरी तरह जर्जरित होकर जीव कृष्ण के पास पहुँचता है, और धीरे धीरे अनन्य भक्ति मार्ग में प्रगति करने लगता है। तब जाकर उसे पूर्व दुःख कल्याणप्रद प्रतीत होता है।

जिस प्रकार माता का ध्यान अपने बच्चों पर हर समय रहता है, उसी प्रकार भगवान का ध्यान उनके भक्तों पर हर समय रहता है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण कभी स्वयं आकर या कभी भक्तों के वेश में स्वयं भौतिक धरातल पर पधारकर या कभी भक्तों को भेजकर जीवों के लिए शुद्ध भक्ति का मार्ग समय समय पर प्रशस्त करते रहते हैं।

इस दुःख प्रदान करने वाली माया से कोई कैसे मुक्त हो सकता है ? इसका उत्तर श्री दशमूल के सातवें श्लोक में उल्लेख हैं–

यदा भ्रामं भ्रामं हरिरसगलद्वैष्णवजनं
कदाचित संपश्यन तदनुगमने स्याद रुचियुतः।
तदा कृष्णवृत्यात्यजति शनकैर्मायिकदशां
स्वरुप विभ्रानो विमलरसभोगं स कुरुते।।
(श्री .द. ७)

अनुवादः संसार में उच्च व निम्न योनियों में भ्रमण करते–करते जब हरि–रस में मत्त वैष्णव का दर्शन प्राप्त होता है, तब मायाबद्ध जीव को वैष्णव मार्ग के प्रतिरूचि उत्पन्न होती है। कृष्ण नाम का उच्चारण करते–करते, धीर–धीरे उसकी मायिक दशा दूर हो जाती है। जीव क्रमशः वास्तविक स्वरुप प्राप्त करता हुआ विमल श्रीकृष्ण सेवारस आस्वादन करने के योग्य होता है।

‘साधु–संङ्ग, साधु–संङ्ग दृ सर्व–शास्त्रे कय ।
लव–मात्र साधु–संङ्गे सर्व–सिद्धि हय।।

अनुवादः सारे शास्त्रों का निर्णय है कि शुद्ध भक्त के साथ क्षण–भर की संगति से ही मनुष्य संपूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है।

(चौ. च. म. २२.५४)

इसलिए, कृष्ण भक्त का संग ही सबसे बड़ा वरदान हैं। ध्रुव महाराज ने छः महीने तक कठोर तपस्या की और जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान का दर्शन हुआ, तब उन्होंने भगवान से सिर्फ भक्तो का संग ही माँगा।

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि में प्रसंङ्गों
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः।।११।।

अनुवादः ध्रुव महाराज ने आगे कहाः "हे अनंत भगवान, कृपया मुझे आशीर्वाद दें जिससे मैं उन महान भक्तों की संगति कर सकूँ जो आपकी दिव्य प्रेमाभक्ति में उसी प्रकार निरंतर लगे रहते हैं जिस प्रकार नदी की तरंगे लगातार बहती रहती हैं। ऐसे दिव्य भक्त नितांत कल्मषरहित जीवन बिताते हैं। मुझे विश्वास है कि भक्तियोग से मैं संसाररूपी अज्ञान–सागर को पार कर सकूँगा जिसमें अग्नि की लपटों के समान भयंकर संकटों की लहरें उठ रही हैं। यह मेरे लिए सरल रहेगा, क्योंकि मैं आपके दिव्य गुण तथा लीलाएं सुनने के लिए पागल हो रहा हूँ, जिनका अस्तित्व शाश्वत है।"

(भा. ४.९.११)

यद्यपि उनके तप का उद्धेश्य पिता से भी बड़ा राज्य प्राप्त करना था, परन्तु जैसे–जैसे वह भगवान श्रीकृष्ण के निकट पहुँचते गए वैसे–वैसे ही उनकी भौतिक इच्छाएँ समाप्त होती गयी। भगवान शिव ने भी भगवान विष्णु से भक्तो के संग की ही कामना की–

तुलयाम लवेनापि न स्वर्ग नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गि– सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।५५।।

अनुवादः भगवद्भक्त के साथ क्षण– भर की संगति के मूल्य की तुलना जब स्वर्ग–प्राप्ति या भौतिक बंधन से मुक्ति से नहीं की जा सकती, तो भौतिक सम्पति के रूप में सांसारिक वरदान के विषय में क्या कहा जाए, जो उन लोगों के लिये है जिन्हें एक न एक दिन मरना ही है।
(चौ. च. २.२२.५५)

यदि हम कोई नया बीज बोएं और उसमें से पौधा निकल आये तो पशुओं से बचाने के लिए हम उसके चारों ओर बाढ़ लगा देते हैं। ठीक इसी प्रकार कृष्ण भक्ति का बीज बोने पर जब भक्ति लता बढ़ने लगती है, तब भक्तों की संगति ही वह बाढ़ हैं जो मायारूपी पशुओं से हमारी हर समय रक्षा करती है।

भक्तों की संगति से पापी से पापी व्यक्ति भी भक्ति उन्मुखी सुकृति अर्जित कर सकता है। जब यह सुकृति ज्यादा मात्रा में एकत्रित हो जाती है, तो कृष्ण–भक्ति प्रदान करती है।

लेकिन भोग–उन्मुखी पुण्य या मुक्ति–उन्मुखी पुण्य ऐसा फल प्रदान करने में असमर्थ हैं। भोग–उन्मुखी पुण्य से जीव माया की मार खाता रहता है, और मुक्ति–उन्मुखी पुण्य से केवल ब्रह्मज्योति में प्रवेश कर सकता है। इन पुण्यों से वह सर्वश्रेष्ठ सिद्धि–कृष्णप्रेम कभी प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए ऐसा पुण्य अर्जित करना कृष्ण भक्ति में अवरोध है।

हर बुद्धिमान व्यक्ति को कृष्ण भक्तों के संग में कीर्तन, भागवत कथा श्रवण, एकादशी व्रत पालन, जन्माष्टमी, गौर पूर्णिमा, आदि उत्सवों का पालन करना चाहिए। पापी से पापी व्यक्ति भी इस प्रकार कृष्ण भक्ति ह्दय में जागृत कर सकता है। उदाहरणस्वरुप, हरिदास ठाकुर के पास कुछ लोगो ने षड्यंत्र कर एक प्रसिद्ध वैश्या को भेजा। परन्तु तीन दिन लगातार हरिदास ठाकुर के मुख से निकलते हरे कृष्ण महामंत्र सुनकर वह कृष्ण भक्ति की ओर आकृष्ट हुई, और हरिदास ठाकुर जैसे सिद्ध पुरुष से नाम ग्रहण कर नित्य लाखों हरिनाम जपने लगी। यह प्रताप है कृष्ण भक्तों के संग का। कोई भी इस प्रकार माया की मार से सदा के लिए मुक्त हो सकता है।

सर्वतो मनसोअसङ्गमादौ सङ्ग च साधुषू।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्। २३।।

अनुवादः निष्ठावान शिष्य को चाहिए कि मन को प्रत्येक भौतिक वस्तु से विलग रखना सीखे एवं अपने गुरु तथा अन्य

साधु भक्तों की संगति का सकारात्मक रूप से अनुशीलन करे। उसे अपने से निम्न पद वालों के प्रति उदार होना चाहिए, समान पद वालों के साथ मैत्री करनी चाहिए और जो अपने से उच्चतर आध्यात्मिक पद पर हैं, उनकी विनीत भाव से सेवा करनी चाहिए। इस तरह उसे समस्त जीवों के साथ समुचित व्यवहार करना सीखना चाहिए।।

(भा. ११.३.२२)

भक्तिविनोद ठाकुर उनके विरचित गीतावली के एक भजन में लिखते हैं, "मिछे मायार बोशे, जाच्चो भेषे खाच्चो हाबुदुबू भाई" जो भी माया के पीछे गए वह दुखों में 'हाबू दुबू' खाता रहेगा, अर्थात् माया की मार खाता रहेगा। जैसे कि अपराधी को पानी में सर डुबो–डुबो कर कष्ट दिया जाता है, पर सांस निकलने से ठीक पहले निकाल लेते हैं। माया भी इस प्रकार हमारे साथ करती है। इसी को 'हाबू दुबू' बोला जाता है। माया के भवसागर में माया हमें 'हाबू दुबू' खिलाती रहती है।

भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं, "जीव कृष्ण दास ए विश्वास कोरले तो आर दुखो नाइ"। यदि जीव अपने आपको कृष्ण का दास मान लेता है, तो उस संसार के दुखों में और अधिक डुबकी लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। "राधा कृष्ण बोलो संगे चलो एई मात्रो भीखा चाय"। भक्तिविनोद ठाकुर, जो महान वैष्णव हैं और सप्तम गोस्वामी माने जाते हैं, वह सभी बद्ध प्राणियों से कह रहे हैं कि, "बस इतना

ही मैं भिक्षा मांग रहा हूँ राधा कृष्ण बोलो और हमारे संग चलो।" बद्ध जीवो को माया की मार खाते हुए देखकर शुद्ध भक्तों का ह्रदय विदीर्ण हो जाता है, वह दया करके हमें अपना संग देते हैं और साथ चलने को कहते हैं। 'रसिक शेखर कृष्ण परम करुण' – परम करुणामय कृष्ण ही अपने शुद्ध भक्तों को हमारे कल्याण के लिए भेजते हैं।

श्रीमद भागवतम के ग्यारहवें स्कंध में वसुदेव श्री नारद मुनि से बोलते हैं,

भूतानां देवचरितं दुखाय च सुखाय च।
सुखायेईव् हि साधुनां त्वादृशामच्युतात्मनाम।।५।।

अनुवादः देवताओं के कार्यकलापों से जीवों को दुःख तथा सुख दोनों प्राप्त होते हैं, किन्तु अच्युत भगवान को अपनी आत्मा माननेवाले, आप जैसे महान संतो के कार्यें से समस्त प्राणियों को केवल सुख ही प्राप्त होता है।

(भा. 11.2.5)

श्रीप्रबुद्ध हमें माया से मुक्ति का उपदेश देते हुए कहते हैं कि,

एवं कृषणात्मनाथेषु मनुष्येषु च सुह्रदम।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु।।

अनुवादः जो अपने चरम स्वार्थ का इच्छुक है, उसे उन व्यक्तियों से मैत्री करनी चाहिए, जिन्होंने श्रीकृष्ण को

अपना जीवन–नाथ मान लिया है। उसे समस्त जीवों के प्रति सेवाभाव भी उत्पन्न करना चाहिए। उसे मनुष्य –रूप में पैदा हुए लोगों की और इनमें विशेष रूप से उनकी सहायता करनी चाहिए, जो धार्मिक आचरण के सिद्धान्तों को अपनाते हैं। धार्मिक व्यक्तियों में से भगवान के शुद्ध भक्तों की सेवा की जानी चाहिए।

(भा. ११.३.२६)

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार, ''भगवद्भक्तों का सर्वोपरि कर्तव्य है उन लोगों के साथ मैत्री स्थापित करना, जो पूर्ण रूप से कृष्ण के शरणागत हैं और इस तरह जिन्होंने शरणागति प्राप्त कर ली है। मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान तथा उनके भक्त दोनों की सेवा करें, क्योंकि अपने शुद्ध भक्तों की सेवा किये जाने से भगवान अधिक प्रसन्न होते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह न केवल औपचारिक तौर पर भगवान, उनके भक्तों तथा उनकी पूज्य साज–सामग्री को नमस्कार करे, अपितु वह वास्तव में भगवान के प्रतिनिधियों की सेवा करे, जो महाभागवत कहलाते हैं।''

माया से बचने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हम भगवान और भक्तों की सेवा करे, क्योंकि भगवान कृष्ण अपनी सेवा से भी बढ़कर तब प्रसन्न होते हैं जब हम उनके भक्तों की सेवा करते हैं। श्रीकृष्ण से सम्बंधित हर वस्तु या व्यक्ति को नमस्कार करें। गुरु कृष्ण के प्रतिनिधि

होते हैं। यदि हम उनके प्रतिनिधि की सेवा करते हैं तो श्रीकृष्ण–कृपा अनायास ही मिल जाती है। वैष्णव की सेवा से वैष्णवों की भी कृपा और आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं, जिससे हमारे मन से मोह–मायारूपी डायन का विनाश हो जाता है और शुद्ध श्रीकृष्ण भक्ति का उदय होता है।

परसपरानुकथनं पावनं भगवघशः।
मिथो रतिर्मिस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः।।

अनुवादः मनुष्य को चाहिए कि वह भगवद्भक्तों के साथ एकत्र होकर भगवान की महिमा–गायन के लिए उनकी संगति करना सीखें। यह विधि अत्यंत शुद्ध बनाने वाली है। ज्योंही भक्तगण इस प्रकार प्रेमपूर्ण मैत्री स्थापित कर लेते हैं, त्योंही उन्हें परस्पर सुख तथा तुष्टि का अनुभव होता है। इस प्रकार एक–दूसरे को प्रोत्साहित करके, वे उस भौतिक इन्द्रिय–तृप्ति को त्यागने में सक्षम होते हैं जो समस्त कष्टों का कारण है।

(भा. ११.३.३०)

भक्तों की संगति में भगवान श्रीकृष्ण का गुणानुकीर्तन माया के पाश से निकलने में अत्यंत सहायक है। जो भी व्यक्ति भक्तो से प्रेमपूर्ण मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, उसका कभी पतन नहीं होता और उसे माया की मार भी नहीं खानी पड़ती।

भगवान के भक्त ही समस्त प्राणियों को सुखी कर सकते हैं। शुद्ध भक्त कभी माया के चंगुल में नहीं आते। इसलिए ऐसे भक्तो की संगति सदा लाभकारी सिद्ध होती है। जिस प्रकार एक बंधा हुआ व्यक्ति दूसरे बंधे हुए व्यक्ति का पाश नहीं खोल सकता उसी प्रकार कोई भले ही कितना ही विद्वान ब्राह्मण हो और शास्त्रों में पारंगत हो, परन्तु यदि वह श्रीकृष्ण को अपनी आत्मा स्वीकार नहीं करता, तो वह भी माया के सतोगुण में बंदी ही रहता है। इस कारण वह किसी और को तो क्या स्वयं को भी मुक्ति नहीं दिला सकता। परन्तु एक मुक्त व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की रस्सी खोलकर उसको मुक्ति दिला सकते हैं। इस प्रकार एक शुद्ध भक्त जो माया के तीनो गुणों से मुक्त है, दूसरे व्यक्ति को भी मुक्त कर सकता है। इसलिए प्रत्येक बुद्धि मान व्यक्ति को चाहिए कि वह भगवान श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्तों की शरण ले और माया के चक्र से स्वयं को मुक्त कर ले। इस तरह हम माया से बच सकते हैं।

५. हरिनामः

पूर्णयता शरणागत कृष्ण–भक्त को कभी माया की मार नहीं पड़ती। जैसे कि श्री हरिदास ठाकुर श्रीकृष्ण के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित विनम्र भक्त थे। मुस्लिम परिवार में जन्म होने के कारण वह स्वयं को अन्यों से निम्न मानते थे। इसी कारण पुरी में रहने के बाद भी उन्होंने कभी जगन्नाथ जी के दर्शन हेतु मंदिर जाने की इच्छा तक नहीं

की। सदा जगन्नाथ मंदिर के चक्र को ही प्रणाम करते और नित्य तीन लाख हरिनाम का जप करते। महाप्रभु जो कि स्वयं जगन्नाथ हैं, जगन्नाथ प्रसाद देने हेतु स्वयं चलकर श्रील हरिदास ठाकुर की कुटिया में पधारते हैं।

कुछ यवन (मुस्लिम) उनके हरिनाम जप करने से अप्रसन्न थे। वे सोचते थे कि किसी तरह यदि हरिदास ठाकुर को गलत सिद्ध कर दें, तब उनको फिर से यवन (मुस्लिम) बनकर रहना पड़ेगा, क्योंकि भक्त समाज उनको बहिष्कृत कर देगा। इसी आशा से हरिदास ठाकुर के पास सबसे प्रसिद्ध वैश्या को भेजा गया। हरिदास ठाकुर ने बड़ी विनम्रता के साथ वैश्या को बैठने को कहा और कहा कि उनका उस दिन का हरिनाम जप का प्रण पूर्ण होते ही वह वैश्या की इच्छा पूर्ति करेंगे। दो दिन वैश्या ने हरिनाम सुनकर बिताया। तीसरे दिन उसके हृदय में परिवर्तन हुआ और अपनी गलती का अनुभव हुआ। वह हरिदास ठाकुर को गुरु मान चुकी थी और हरिदास ठाकुर ने उसको भी हरिनाम प्रदान किया। वैश्या श्रीकृष्ण भक्त बन गयी और लाखों नाम नित्य जपने लगी। इस घटना से हरिदास ठाकुर की ख्याति और भी बढ़ गयी।

एक बार मायादेवी स्वयं हरिदास की परीक्षा लेने आई। परन्तु माया देवी की तीव्र सुन्दरता भी श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त हरिदास ठाकुर को प्रभावित नहीं कर पायी, और माया देवी ने हरिदास ठाकुर से "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण

कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" महामंत्र की दीक्षा ली। अतः हमें सदा हरिनाम की शरण में रहना चाहिए तभी हम माया के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं।

मृगारी का जीवन भी हरिनाम जप से पवित्र हो गया था। पहले वह पशुओं का वध करके एक पापी जीवन बिताता था। परन्तु नारद मुनि के मार्ग दर्शन में वह पाप–वृत्ति को छोड़कर गंगा किनारे कुटिया बनाकर पत्नी के साथ नित्य हरिनाम जप करने लगा तो उसका जीवन आनंदमय हो गया और वह मायामुक्त हो गया।

इसलिए भगवान् का नाम–कीर्तन माया के चक फंदे से बाहर निकलने का अत्यंत सहज उपाय है। हरे कृष्ण महामंत्र की जप विधि अत्यंत सरल है और कोई भी इसे अपनाकर माया से अपना पीछा छुड़ा सकता है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।
इति षोडशकं नाम्नां कलि–कल्मष–नाशनं
नातः परतरोपयः सर्व–वेदेशु दृश्यते ।।

कलि संतरण उपनिषद में इस उपर्युक्त श्लोक का वर्णन आता है। यह श्लोक इस सृष्टि के प्रथम जीव ब्रह्मा जी द्वारा कहा गया है। जब नारद मुनि ने उनसे पूछा कि भगवान के वे कौन कौन से पवित्र नाम हैं, जो कलियुग में सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। तब ब्रह्मा जी ने पवित्र हरिनाम

की महिमा बताई कि सोलह अक्षर का ये नाम–मंत्र ही कलियुग के कल्मष को नाश करने में सक्षम है। सभी वेदों के अध्ययन के पश्चात् यह निकल कर आया है।

कलि काले नामरूपे कृष्ण अवतार ।
नाम हैते हय सर्व जगत् निस्तार ।।

चैतन्य चरितामृत आदिलीला (१७.२२) के इस श्लोक में हरि नाम को इस कलियुग में भगवान् का अवतार बताया गया है। भगवान् के शुद्ध नाम का उच्चारण करने से कोई भी जीव कृष्ण के संपर्क में आ सकता है। अपराध रहित लिया गया भगवान का शुद्ध नाम बहुत प्रभावशाली होता है। भगवान् श्रीकृष्ण का पवित्र नाम अप्राकृत है, अतएव इसे कभी भी इस भौतिक संसार की शब्द ध्वनि नहीं मानना चाहिए। श्रील प्रभुपाद इसके लिए पानी का उदारहण देते हैं। वे बताते हैं कि जब हमें प्यास लगती है, तब केवल पानी, पानी, पानी बोलने से हमारी प्यास नहीं बुझती। परन्तु जब हम कृष्ण का नाम लेते हैं तो वह पूर्ण रूप से हमारे साथ होते हैं। कृष्ण का नाम कोई साधारण भौतिक नाम नहीं है। पद्म पुराण में वर्णित निम्नांकित श्लोक स्पष्ट रूप से नाम की महिमा का वर्णन करता है।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चौतन्य–रस–विग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नतवान्नाम–नामिनोः।।

अनुवादः– कृष्ण का पवित्र नाम अलौकिक आनंद से परिपूर्ण है। चूंकि यह स्वयं कृष्ण ही हैं जो समस्त आनंद

के आगार हैं, अतः यह समग्र दिव्य वर प्रदान करता है। कृष्ण का नाम पूर्ण है तथा यह समस्त दिव्य रसों का स्वरुप है। यह किसी भी स्थिति में भौतिक नाम नहीं है तथा यह स्वयं श्रीकृष्ण से कम शक्तिशाली नहीं है। चूंकि कृष्ण–नाम भौतिक गुणों से कलुषित नहीं है, इसका माया से सम्बंधित होने का प्रश्न ही नहीं उठता । कृष्ण का नाम सदा सर्वदा मुक्त तथा दिव्य है। ऐसा इसीलिए है क्योंकि कृष्ण व कृष्ण का नाम अभिन्न हैं।

ब्रह्मनारदीय पुराण (३८.१२६) में बताया गया है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

अर्थात, कलियुग में हरिनाम के अलावा और कोई उपाय नहीं जिससे हम मोह–माया के बंधन से सदा के लिए मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत में प्रवेश कर सकें।

हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य सोलह माला जप अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए 108 मनके की माला लेकर प्रत्येक मनके पर "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" महामंत्र का उच्च स्वर में जप करें ताकि अपने कान में मंत्र सुनाई दे। इस प्रकार नित्य संख्यापूर्वक भगवान श्रीकृष्ण का नाम जप करने से हम माया से मुक्त हो सकते हैं।

हमें माया से बचने के लिए भक्तों की संगति, हरिनाम का जप और प्रचार, भागवत और गीता का प्रामाणिक

भक्तों से श्रवण, प्रामाणिक गुरु का आश्रय और उनके अधीन होकर शास्त्रों का अध्ययन, वृन्दावन वास, अर्थात भगवान की लीलास्थली में वास करना, आध्यात्मिक गुरु से हरिनाम की दीक्षा और श्रद्धापूर्वक अर्चाविग्रह की सेवा करनी चाहिए। इस तरह जब हम भक्ति में प्रगति करेंगे तो त्रिगुणमयी माया के चंगुल से मुक्त हो जायेंगे।

पाँचवा अध्यायः

पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर

1. माया क्या है ?

उत्तरः माया श्रीकृष्ण की जीव को अज्ञानरुपी अन्धकार में डालनेवाली शक्ति है। यह माया जीव को स्वरुप–ज्ञान भुलाती है कि मैं आत्मा हूँ। शरीर और शरीर के संबंधियों के साथ अहम् ममत्व कराती है। अर्थात, हमें समझाती है और भ्रमित करती है कि मैं यह शरीर हूँ और शरीर के सम्बन्धी, जैसे कि पति–पत्नी, पुत्र, परिवार, आदि मेरे हैं।

2. माया का उग्र स्वरूप क्या है ?

उत्तरः वैसे तो सम्पूर्ण भौतिक जगत माया है। क्योंकि भौतिक जगत से श्रीकृष्ण का सम्बन्ध टूटा हुआ सा है। लेकिन, सामान्य जीव के लिए स्त्री की पुरुष में और पुरुष की स्त्री में मैथुन आसक्ति सबसे बड़ी माया है। माया का दूसरा उग्र स्वरुप स्वर्ण या धन की आसक्ति है।

3. स्त्री और धन माया कैसे हैं ?

उत्तरः स्त्री स्वभाव से सुन्दर है, इसलिए पुरुष उसमे आसक्त हो जाता हैं और कामसुख ही लक्ष्य बन जाता है। इससे वह श्रीकृष्ण की भक्ति को भूल जाता है। ऐसे ही

स्त्री भी जब पुरुष के प्रति आकर्षित हो जाती है, और श्रीकृष्ण को भूल जाती है, तो यह स्त्री के लिए माया है। अगर स्त्री–पुरुष कृष्ण भक्त बालक पाने के लिए मैथुन करें तो यह धर्म है, माया नहीं है। "धर्मविरोध्य कामोस्मी" (गीता) माया नहीं है। स्त्री का दूसरा स्वभाव है विस्तार करना। सबसे पहले खाना पकाने के लिए बर्तन और दूसरी सुविधा जनक वस्तुएं उसके बाद घर, कोठी, धन–अर्जन, उसके बाद पुत्र–परिवार इत्यादि से स्त्री–पुरुष भगवान श्रीकृष्ण से अलग दूसरी ही सेवा में लग जाते हैं। इनमें आसक्ति करवाती है, लोभ जगाती है, और पुरुष दिन–रात गधे की तरह धन अर्जन में कठोर परिश्रम करता रहता है। उसका अधिकांश समय जो श्रीकृष्णभावना में जाना चाहिए, वह माया में जाता है।

धन अर्जन करने के बाद यह धन हमें श्रीकृष्ण की सेवा में लगाना चाहिए। धन भगवान् श्रीकृष्ण के लिए ही अर्जित करना चाहिए। परन्तु व्यक्ति उसे इन्द्रिय तृप्ति में लगाता है जिससे श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति कम और धन में आसक्ति अधिक हो जाती है। इसलिए स्त्री और धन माया का उग्र स्वरुप हैं, क्योंकि यह हमें श्रीकृष्ण की सेवा से दूर ले जाते हैं।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्म–एक–अन्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।।६।।

अनुवादः समस्त वृत्तिपरक कार्य निश्चय ही परम मोक्ष के निमित्त होते हैं। उन्हें कभी भौतिक लाभ के लिए संपन्न नहीं किया जाना चाहिए। इससे भी आगे, ऋषियों के अनुसार, जो लोग परम वृत्ति (धर्म) में लगे हैं, उन्हें इन्द्रियतृप्ति के संवर्धन हेतु भौतिक लाभ का उपयोग कदापि नहीं करना चाहिए।

(भा. १.२.६)

"संसिद्धिःर्हरितोषणम् (भा १.२.१३) अर्थात जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है हरि, यानी कृष्ण को तुष्ट करना।

4. माया जीव को क्यों मार मारती है ?

उत्तरः क्योंकि जीव श्रीकृष्ण से विमुख होकर इन्द्रिय तृप्ति अर्थात् भोग की इच्छा करता है और श्रीकृष्ण की भक्ति को भूल जाता है। श्रीकृष्ण भक्ति की ओर जीव को उन्मुख करने के लिए माया मार मारती है।

कृष्ण भुलि' सेइ जीव अनादि–बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार–दुःख।।

अनुवादः जीव अनंत काल से श्रीकृष्ण को भूलकर बाह्य रूप द्वारा आकृष्ट होता रहता है, अतः माया उसे भौतिक संसार में सभी प्रकार के दु0ख देती रहती है।

(चौ. च. २. २०.११७)

कृष्णबहिर्मुख हइया भोग–वाञ्छा करे।
निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे।।

अनुवादः अनादिकाल से कृष्ण–विमुख जीव नाना प्रकार से सांसारिक भोगों की अभिलाषा करता आ रहा है। यह देख कर उसके समीप ही रहने वाली माया झपट कर उसे पकड़ लेती है।

(प्रे. वि. २)

5. माया कैसे मार मारती है ?

उत्तरः माया हमें अज्ञानता में डालकर और कृष्ण को भुलाकर मार मारती है। जैसे ऊँट काँटों को चबाकर अपने ही रक्त का स्वाद लेकर सोचता है कि कांटें कितने स्वादिष्ट है, ठीक इसी प्रकार इन्द्रिय तृप्ति करके हम स्वयं ही दुःख को आमंत्रित करते हैं। जिस तरह गधा एक गाजर के लालच में धोबी का सारा काम करता है, पर उसको गाजर नहीं थोड़ी सी घास ही मिलती है, उसी प्रकार मनुष्य भी थोड़ी सी इन्द्रिय तृप्ति के लोभ में जन्म–जन्मान्तर तक भौतिक संसार में दुःख भोगता रहता है।

मनुष्य सरल जीवन जीकर तथा श्रीकृष्ण की भक्ति करके संपूण आनंद व सुख प्राप्त कर सकता है। परंतु वह एसा न करके कड़ी मेहनत में लगा रहता है। जैसे कि कोई ब्रह्मचारी बन जाता है, परन्तु संसार सुख के प्रति आकर्षित होकर विवाह करके, बच्चे उत्पन्न करके, सारे संसार का बोझ कंधे पर ले लेता है। फिर बहू आती है जो आदर नहीं करती, या दामाद खराब मिल जाता है जो दुःख का कारण बनता है। वृद्ध हो जाने पर अपने ही घरवाले

तिरस्कार करते हैं, जिस प्रकार बूढ़े बैल का तिरस्कार किया जाता है। इस तरह माया में फंसने के कारण नाना प्रकार के दुःख झेलने पड़ते है ।

कुटुंब सुखी हुआ, तो ऐसी लम्बी बीमारी आती है जो दुखी करती है, जैसे कि लकवा मार जाना, हड्डियाँ टूट जाना, पूरे शरीर में आर्थराइटिस, आदि। ऐसे क्लेशों के माध्यम से माया दुःख देती है। इसके अतिरिक्त काम, क्रोध, लोभ व मोह, आदि से जनित दुःख देकर भी माया अपनी मार मारती है।

माया के उदाहरणः

क. मदिरा पीने और मदिरा की लत लग जाने पर कुटुंब की बर्बादी हो जाना या जलोदर रोग हो जाने पर शरीर में अत्यंत कष्ट झेलकर मर जाना ।

ख. दिल्ली से वृन्दावन जाना भक्ति है। लेकिन हाईवे पर निर्धारित गति से अधिक गाड़ी चलाना और सड़क दुर्घटना करके अपनी और गाड़ी में बैठे दूसरे लोगो की भी हड्डी–पसली तुड़वाना, ये माया की मार है।

6. माया कौन हैं ?

उत्तरः माया शंकर भगवान की पत्नी दुर्गादेवी हैं, यह कृष्ण की बहिरंगा शक्ति हैं। भौतिक संसार की अधिष्ठात्री देवी और इस भौतिक संसार का नियंत्रण करने वाली शक्ति हैं।

7. भगवान सृष्टि की रचना कैसे करते हैं ?

उत्तरः ऐतरेय उपनिषद् (1.1.1) में कहा गया है – "स ऐक्षत" अर्थात, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया। भगवान श्रीकृष्ण अपने विस्तार महाविष्णु (कारणोंदकशायी विष्णु) के द्वारा दुर्गा शक्ति के ऊपर दृष्टिपात करके माया के भौतिक तत्त्वों को क्रियाशील बनाते हैं। इस प्रकार वह बद्ध जीवों को योगनिद्रा से जगाते हैं। जीव भौतिक तत्वों में आसक्त थे इसलिए भौतिक शरीर धारण करते हैं। जीवों की भौतिक इच्छा थी, उनकी इच्छा पूर्ति करने के लिए भगवान भौतिक पदार्थ, भौतिक इन्द्रियाँ, भौतिक इन्द्रियों के विषय, आदी उत्पन्न करते हैं।

8. माया से कैसे बचा जाए?

उत्तरः माया से बचने के कई उपाय हैं परन्तु उनमे से यह पांच मुख्य उपाय हैं:

१. गुरु की शरणागति
२. कृष्ण की शरणागति
३. शास्त्रों का आश्रय
४. साधु संग
५. हरिनाम

इन पाँच उपायों में भी सबसे पहला और प्रमुख उपाय है गुरु की शरणागति (आदो गुर्वाश्रयम)।

9. माया से मित्रता कैसे करे?

उत्तरः जो भी माया की वस्तुए हैं, उनका उपयोग श्रीकृष्ण की सेवा में करने से मायादेवी भी प्रसन्न होती हैं, और जीव को छोड़ देती हैं।

10. मूलतः कृष्ण सबके पिता हैं। यदि माया श्रीकृष्ण के अधीन है तो वह जीवों को भक्ति में लगाने के लिए माया से क्यों नहीं कहते?

उत्तरः जीव स्वतंत्र है, परंतु छोटा है और उसकी स्वतंत्रता भी अल्प है। इसलिए जीव स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके कृष्ण का प्रतिस्पर्धी बनना चाहता है। श्रीकृष्ण जीव की यह स्वतंत्रता छीनना नहीं चाहते, जैसे कि छोटे बालक से उसके पिता की स्वतंत्रता छीनना नहीं चाहते। पिता दृष्टि बचाकर बालक अनुचित कार्य कर लेता है। पिताजी कुछ नहीं कह पाते। कृष्ण माया को कहते हैं कि जीव को मेरे पास ले आओ ताकि वह सुखी हो, पर जीव कृष्ण के पास नहीं जाना चाहता, इसलिए माया मार–मारकर जीवों को कृष्ण–उन्मुख करती है।

11. माया परीक्षा क्यों लेती है ?

उत्तरः माया परीक्षा लेती है जिससे कि जीव श्रीकृष्ण–उन्मुख होकर उनकी सेवा में लगे।

12. गुरु की योग्यता क्या है ?

उत्तरः गुरु की अनेक योग्यताएं हैं। कुछ मुख्य योग्यताएं इस प्रकार हैं–

क. गुरु कृष्ण से चली आयी वैष्णव परंपरा में हो।

ख. उन्होंने कृष्ण भक्ति और कृष्ण प्रचार में अपना जीवन समर्पित किया हुआ हो।

ग. छः वेगों पर जिनका नियंत्रण हो।

ध. वह सभी शास्त्रों में निष्णात हो।

च. वह व्यवहारिक हों।

छ. वह शिष्य–वत्सल हों, स्वभाव से दयालु हों और सबके कल्याण में रत हों।

ज. जिनका आचार–विचार–प्रचार सभी कुछ शास्त्र–युक्त हो।

झ. जो कृष्ण तत्व को अच्छी तरह जानते हों।

ट. जो निरभिमानी, निष्कामी और निर्लोभी हों।

ठ. जो श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त हों।

ड. जो श्रीकृष्ण मंत्र का जप और श्रीकृष्णु की पूजा करते हों।

13. शिष्य की योग्यता क्या है?

उत्तरः शिष्य को चाहिए कि वह प्रामाणिक गुरु को अपना तन, मन, धन, बुद्धि, अहंकार–सर्वस्व समर्पित कर दे (प्रणिपात)। शिष्य जिज्ञासु (परिप्रश्नेन), मुमुक्षु, विनम्र, सहनशील और कृष्ण प्रेम की पिपासा रखनेवाला होना चाहिए। उसे गुरु की सेवा में हमेशा तत्पर रहना चाहिए। गुरु की वाणी और वपु सेवा में तत्पर और उत्साहित रहना चाहिए (सेवया)। गुरु की सेवा करने के लिए शिष्य को स्वच्छता, तपस्या, सहनशीलता, मौन, वेदाध्ययन, सादगी, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा गर्मी और शीत, सुख और दुःख, जैसे द्वैतों के समक्ष समत्व सीखना चाहिए।

14. गुरु का चयन कब करना चाहिए ?

उत्तरः जब हम माया से उब जायें और मन में माया से बचने की जिज्ञासा उठे कि 'मैं इस संसार में दुखी और हताश क्यों हूँ', 'आत्यांतिक दुःख निवृत्ति कैसे हो', 'आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर कैसे हो सकता हूँ'। एसी स्थिति में हमें गुरु के पास जाना चाहिए। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् (मुं. उ. १.२.१२) गुरु के पास जाने की कोई निश्चित आयु नहीं है। तथपि सामान्यतया हमें कम उम्र में ही दीक्षा ले लेनी चाहिए। जैसे ध्रुव महाराज और प्रहलाद महाराज ने बचपन में ही दीक्षा ली – "कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह" (भा. ७.६.१)।

15. गुरु का चयन कैसे करें ?

उत्तरः शिष्य को चाहिए कि मन, बुद्धि, अहंकार समर्पण करने के लिए वह ऐसा गुरु चुने जिनका हृदय उसके अपने हृदय से मिलता हो, जिनकी हर आज्ञा का वह पालन कर सके, जिन्हें वह अपना सब कुछ समर्पित कर सके, जिनके पास शास्त्रों का ज्ञान हो और साथ में वह व्यवहारिक हो। गुरु श्रीकृष्ण की गुरु–परंपरा में हो और प्रश्न पूछने के लिए सरलता से उपलब्ध हों (परिप्रश्नेन)।

16. दीक्षा का अर्थ क्या है और यह क्यों जरुरी है ?

उत्तरः श्रील जीव गोस्वामी ने भक्ति–सन्दर्भ (२८३) में दीक्षा की व्याख्या इस प्रकार की है–

दिव्यं ज्ञानं यतो दधात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्।
तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्वकोविदैः ।।

अनुवाद "दीक्षा वह विधि है जिससे मनुष्य अपने दिव्य ज्ञान को जागृत कर सकता है और पापकर्मों से उत्पन्न सारे फलों को समाप्त कर सकता है। शास्त्रों के अध्ययन में दक्ष व्यक्ति इस विधि को दीक्षा के नाम से जानता है।"

गुरु से दिव्य ज्ञान लेना और पाप का क्षय करना, इसे 'कोविद ज्ञानी दीक्षा' कहते हैं। वैष्णवी दीक्षा का अर्थ है विष्णु मन्त्र का जप करना, विष्णु मूर्ति का अर्चन करना, वैष्णव गुरु की सेवा करना, वैष्णव गुरु को सबकुछ

संपूर्णतया समर्पित करना और विनम्रता से आध्यात्मिक जिज्ञासा करना।

दीक्षा आवश्यक है क्योंकि इसके पश्चात् ही हमारा श्रीकृष्ण से सीधा सम्बन्ध जुड़ता है और कृष्ण की ओर जाने के लिए मार्ग– दर्शन मिलता है। हरि भक्ति विलास (२.३–४) और भक्ति–सन्दर्भ (२८३) में कहा गया है कि प्रामाणिक गुरु से दीक्षा के बिना उसे ब्राह्मण परिवार में जन्मा व्यक्ति भी हरिनाम की पूजा नहीं कर सकता। दीक्षा के बिना उसको ब्राह्मण नहीं माना जा सकता। हरि भक्ति विलास (२.६) में विष्णु यामल से बताते हैं कि दीक्षा के बिना सभी आध्यात्मिक कार्य निरर्थक हैं। ऐसा व्यक्ति जो प्रामाणिक गुरु से दीक्षित नहीं हैं, वह पुनः पशु योनी में प्रवेश करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हर व्यक्ति प्रामाणिक गुरु स्वीकार करके उनसे दीक्षा ले और अपना मन–बुद्धि–अहंकार सबकुछ उन्हें समर्पित करे।

17. हरे कृष्ण महामंत्र ही क्यों?

उत्तरः किसी भी कार्य को समय से करने पर ही सबसे अधिक सफलता मिलती है। जैसे कि वर्षा ऋतु के समय धान बोने पर फसल अच्छी और सरलता से मिल सकती है, जबकि ग्रीष्म ऋतु में बोने पर कठिनाई से फसल मिलती है। कलियुग के उपनिषद् "कलि संतरण उपनिषद्" और अन्य शास्त्रों के अनुसार इस युग में हरे कृष्ण महामंत्र ही कृष्णप्रेम पाने का सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम उपाय है।

इस मंत्र द्वारा कृष्ण प्रेम पाने में सफलता सरलता से मिल सकती है।

नारद मुनि अपने आध्यात्मिक गुरु ब्रह्मा जी से पूछते हैं कि कलियुग के प्राणी भव–सागर आसानी से कैसे पार कर सकते हैं ? "नारद पुनः प्रपच्छ तन नाम किम् इति" (क. सं. उ. ४) नारद मुनि ने फिर प्रश्न किया "कलियुग में भगवान् के किन नामों का उच्चारण सबसे प्रभावी है?" "सा होवाचा हिरन्यगर्भ"।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मष नाशनम।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते।।

ब्रह्मा जी ने कहा– सोलह अक्षर का ये नाम "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" कलियुग के कल्मषों को मिटाने का एकमात्र उपाय है। भगवान् के नाम जप के अतिरिक्त कलियुग में और कोई उपाय हमारी रक्षा करने में सक्षम नहीं है, ऐसा वेदों में वर्णित है।

भगवान् के पवित्र नाम का जप किसी नियम में बंधा नहीं है। उसे किसी भी देश, काल, परिस्तिथि में लिया जा सकता है।

खाईते सुईते यथा तथा नाम लय ।
देश काल नियम नाही सर्व सिद्धि हय ।।

अनुवादः भगवान् के पवित्र नाम का जप देश काल नियम और अन्य परिस्थितियों में बंधा हुआ नहीं है इसलिए जो भी प्रेमपूर्वक भगवान् के नाम का जप करता है, वह सर्व सिद्धि प्राप्त करता है।

(चौ. च. अं. २०.१८)

हम सोते हुए, खाते हुए या किसी भी परिस्थिति में हरिनाम जप कर सकते हैं और इसके माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण का प्रेम आसानी से हमारे हृदय में प्रकट हो सकता है। यही जीवन की सर्वश्रेष्ठ सिद्धि है क्योंकि भगवान् ने अपने नाम में अपनी सारी शक्तियाँ सन्निहित कर दी हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा "प्रेम पुमार्थो महान"। हरे कृष्ण महामंत्र जप करने पर श्रीकृष्ण का शुद्ध प्रेम हमारे जीवन में जागृत होगा, जो हमारे जीवन का परम चरम लक्ष्य है।

18. क्या उन सभी जीवों को माया की मार का सामना करना पड़ता है जो वैष्णव अपराध करते हैं?

उत्तरः हाँ, जैसे कि सौभरी मुनि ने मछलियों का पक्ष लेकर परम वैष्णव गरुड़ देव का अपराध किया, इसलिए सौभरी मुनि को माया की मार पड़ती है। यह सारा व्याख्यान इसी पुस्तक में बताया गया है। दंभ या द्वेष के कारण ही हम किसी वैष्णव का अपराध करते हैं परिणाम स्वरूप हम भ्रमित हो जाते हैं और इन्द्रिय तृप्ति में लग जाते हैं, जो माया की मार है।

19. क्या कृष्ण जीव को कुछ संकेत देते हैं कि वह माया में ग्रस्त होकर अवांछित कार्य करने वाला है और माया की मार खाने वाला है?

उत्तरः कृष्ण हम सबके शुभेच्छुक हैं इसलिए चेत गुरु "सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो" बनकर हमें अच्छे कर्मों का संकेत करते हैं और बुरे कर्म करने के लिए मना करते हैं। वह हमारे सुहृद मित्र "सुहृदं सर्वभूतानां" होने के नाते हमें अच्छे–बुरे का संकेत करते रहते हैं।

22. जीवात्मा माया में क्यों फंस जाता है ?

उत्तरः जीवेर 'स्वरूप' हय–कृष्णेर 'नित्य–दास'।
कृष्णेर 'तटस्था–शक्ति' 'भेदाभेद–प्रकाश'।।
(चौ. च. २.२०.१०८)

जीव अति अल्प है और वह भगवान् कृष्ण की तटस्था शक्ति है। तटस्था शक्ति होते हुए वह कृष्ण से द्वेष करता है कि आप अकेले भोक्ता क्यों? मैं भी भोक्ता हूँ।

कृष्ण भुलि' सेइ जीव अनादि–बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार–दुःख।।
(चौ. च. २.२०.११७)

जीव अनन्त काल से कृष्ण को भूलकर बाह्य प्रकृति द्वारा आकृष्ट होता रहता है, अतः माया उसे इस भौतिक संसार में सभी प्रकार के दुःख देती रहती है। जीव कृष्ण से

अलग होकर कृष्ण की तरह भोग करने की इच्छा करता है, इसलिए माया उसे मार मारती है।

23. क्या कृष्ण भक्त भी माया से प्रभावित होते हैं?

उत्तर: कृष्ण के भक्तों के तीन प्रकार हैं – कनिष्ठ भक्त, मध्यम भक्त एवं उत्तम अधिकारी भक्त। कनिष्ठ एवं मध्यम भक्त माया के प्रभाव में आ सकते हैं। लेकिन उत्तम अधिकारी शुद्ध भक्त कहलाते हैं। ये उत्तम अधिकारी माया के चंगुल में नहीं आते क्योंकि वे हमेशा कृष्ण के अनन्य भजन में रत रहते हैं। माया के लिए उनके पास कोई समय नहीं बचता, जैसे कि हरिदास ठाकुर, अम्बरीश महाराज, श्रील प्रभुपाद, आदि।

24. माया मार मारती है, फिर भी लोग भक्ति में क्यों नहीं लगते?

उत्तर: क्योंकि जीव अनादिकाल से संसार रूपी माया के सुख में आवृत्त हो चुका है, उसे माया में ही सुख लगता है। यह अज्ञानता है। इसको मिटाने के लिए साधु–शास्त्र–गुरु का आश्रय लेना चाहिए जो उसको असुविधाजनक व दुखदायी लगता है। इसलिए माया की मार खाकर भी वह भक्ति में नहीं लगना चाहता है।

25. क्या प्रकट गुरु की आवश्यकता है?

उत्तर: भगवान कृष्ण ने गीता (४.३४) में कहा हैं – "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया"। अप्रकट गुरु से

कोई कैसे प्रश्न कर सकता है, और कैसे गुरु उसकी समस्या का समाधान कर सकते हैं ? वपु सेवा संभव नहीं और अगर शिष्य कुछ गलत पथ पर चले तो मार्ग दर्शन भी अप्रकट गुरु नहीं कर सकते। रूप गोस्वामी कहते हैं "स्वधर्मो पृच्छा"। अप्रकट गुरु से कुछ भी पूछ नहीं सकते। प्रकट गुरु नहीं बनाने का अर्थ है कि अहंकार के कारण समर्पण और सेवा न करना, यह भी माया की मार है। अभिगच्छेत (जाना), अप्रकट गुरु के पास कैसे जायेंगे? समिधा (हवन की लकड़ी) की प्रकट गुरु को आवश्यकता होती है, अप्रकट गुरु को नहीं। कृष्ण गीता में कहते हैं "एवं परंपरा प्राप्तम", परंपरा जरुरी है, और परंपरा को चलाने के लिए प्रकट गुरु की शरण नितांत आवश्यक है।

माया की मार

भूमिका

भौतिक संसार दुखमय हैं, क्योंकि यह संसार श्रीकृष्ण की बहिरंगा शक्ति महामाया के द्वारा परिचालित होता हैं। इसलिए इसमें दुखों की श्रृंखला लगी रहती है। लेखक ने इस पुस्तक में कुछ महत्वूर्ण दुखों को लिपिवद्ध किया है, जिससे हर व्यक्ति बचना चाहता है। परन्तु समाज के अधिकतर व्यक्तियों को इनसे बचने का उपाय नहीं पता। मनुष्य जीवन अति मूल्यवान है, और इस मूल्यवान जीवन को इन्द्रिय तृप्ति में व्यर्थ करने का अर्थ है दुखों को आमंत्रित करना। लेखक ने माया की मार से बचने का अत्युत्तम उपायों का यहाँ वर्णन किया है।

यह पुस्तक—माया क्या है इस बारे में हमें ज्ञान देती है। महामाया दुर्गा देवी जो इस भौतिक जगत की परिचालिका हैं, वह किस तरह से कार्य करती हैं, यह भी बताया गया है। दुर्गा देवी को कई लोग सृष्टीकर्ता मानते हैं, परन्तु वह स्वतंत्र होकर कोई कार्य नहीं कर सकती। मुख्य कर्ता कृष्ण हैं और इसलिए बहिरंगा शक्ति महामाया भी श्रीकृष्ण पर आश्रित हैं। कृष्ण शक्तिमान हैं और महामाया शक्ति हैं। इस शक्ति के द्वारा भगवान भौतिक संसार को चलाते हैं।

मायादेवी कृष्णविमुख जीव को नाना प्रकार से दुःख देती हैं। इसी को माया की मार कहा गया हैद्य लेखक इस पुस्तक में शास्त्रों से भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिससे हमें सीखने को मिलता है कि माया किस तरह और क्यों जीव को मार मारती है। परन्तु ऐसी परिस्थिति में रहना और जन्म–मृत्यु–जरा–व्याधि के चक्र में माया की मार खाते रहना जरुरी नहीं हैं। बुद्धिमान मनुष्य स्वयं को इन परिस्थितियों से मुक्त कर सकता है।

लेखक इस पुष्तक में बताते हैं की किस तरह प्रामाणिक गुरु और श्रीकृष्ण की शरणागत होकर कोई भी माया की मार से बच सकता है। शास्त्रों के अनुसार जीवन व्यतीत करके और भक्तो की संगति के द्वारा किस तरह सदा के लिए भौतिक संसार की मोह माया से और दुखों से छुटकारा पाया जा सकता है। किस तरह से हरिनाम का जप करना चाहिए और इससे माया कभी जीव को मार नहीं मारती और प्रत्येक व्यक्ति शांतिपूर्ण व आनंदमय जीवन व्यतीत कर सकता है। ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में दिया गया है, जो कि दैनिक जीवन में किसी के मन में उठ सकते हैं।

समर्पण

कृष्ण कृपा मूर्ति्त परम पूज्य श्रील ए.सी. भक्ति वेदांत स्वामी प्रभुपाद

यह पुस्तक सर्वाधिक प्रिय मेरे आध्यात्मिक गुरु और कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य, परम पूज्य श्रील ए.सी. भक्ति वेदांत स्वामी प्रभुपाद को समर्पित है।

श्रील ए.सी. भक्ति वेदांत स्वामी प्रभुपाद ने वैदिक साहित्यों में सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथों यथा श्रीमद्‌भागवतम, श्रीमद्‌भगवतगीता यथारूप आदि का अनुवाद किया। साथ ही उन्होंने इन ग्रंथों की ऐसी सुगम्य टीकाएँ लिखीं जो शताब्दियों तक मानवजाति का पथ प्रदर्शन करती रहेंगी।

श्रील प्रभुपाद जी ने अपने जीवनकाल में अनेक मंदिरों, आत्म–निर्भर कृषि समुदायों, वैदिक भोजनालयों और गुरुकुलों की स्थापना की। विश्व भर में अनेकों आध्यात्मिक उत्सवों का आयोजन और लाखों लोगों में भगवद् प्रसाद का वितरण किया। उन्होंने गरीब व लाचार व्यक्तियों की सहायता के साथ–साथ और भी अनेक सामाजिक कल्याण के कार्य किए।

वैदिक साहित्य के सरल और यथारूप अनुवाद व टीकाओं के रूप में उन्होंने जो मानवजाति को अनुपम भेंट दी हैं जिससे प्रतिदिन ना जाने कितने बद्धजीवों का उद्धार हो रहा है, उन्हें जीवन के वास्तविक लक्ष्य के विषय में पता चल पा रहा है। उनकी पुस्तकें भटके हुए जीवों को सही पहचान प्राप्त करा रही है, उन्हें इस सृष्टि के सबसे मूल्यवान धनकोष भगवान के प्रेम का पता बता रही हैं।

श्रील प्रभुपाद के कार्य और उनके निर्देश लाखों लोगों को इस विषाद–युग में भी आनंद प्राप्ति में सहायता प्रदान कर रहे हैं।

साथ ही यह पुस्तक समर्पित है उन सभी वैष्णवों को जो दिन–रात विश्व के कोने दृकोने में भगवान् श्री चौतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आंदोलन का प्रचार करने में अपना जीवन समर्पित कर रहे हैं।

यह पुस्तक समर्पित है उन सभी पाठकों को जो जिज्ञासा पूर्वक जीवन के उद्देश्य को जानना चाहते हैं, समस्याओं का समाधान चाहते हैं और अपने भीतर भगवान् के सुप्तप्रेम को जाग्रत करना चाहते हैं।

यह पुस्तक समर्पित है मेरी परम पूज्य माता श्रीमती शांताबेन और पिता श्रीमान भवान भाई को जिन्होने मेरे जन्म से ही मुझे कृष्णभावनाभावित होने का सुअवसर प्रदान किया, मुझे कृष्ण भक्ति के मार्ग पर अग्रसर किया। मेरी माताजी ने मुझे बचपन से ही सभी वैदिक ग्रंथो, यथा महाभारत, श्रीमद भगवतगीता और श्रीमदभागवतम् का गहन अध्यन करवाया। मेरे पिताजी मुझे कृष्णकथा और भजनों का आस्वादन करवाते थे और मेरे दादाजी मुझे प्रतिदिन भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह के दर्शन के लिए मंदिर ले जाते थे।

लेखक–परिचय

इस पुस्तक के लेखक श्रीमान क्रतुदास जी महाराज का जन्म 5 जुलाई 1944 को लाछरस गाँव, गुजरात, भारत में हुआ। अपने मातृव गाँव में जन्म लेने वाले महाराज जी का परिवार वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बंधित था। लेखक में बचपन से ही नेतृत्व के गुण थे। वह वाकल हाई स्कूल, मोभा रोड, वडोदरा, गुजरात छात्र संघ के अध्यक्ष थे। वडोदरा से सिविल इंजीनियरिंग पूर्ण करने के बाद उन्होनें 1972 में अमेरिका की **St Louis University** से मास्टर्स ऑफ साइंस की **degree** प्राप्त की ।

1968 में उन्होंने श्रीमती अमृत केलि देवी दासी से विवाह किया, जो स्वयं एक धार्मिक महिला हैं एवं भगवान श्रीकृष्ण की समर्पित भक्त हैं। यह दोनों 1970 में इस्कोन के संपर्क में आये एवं 1974 से टोरंटो इस्कोन मंदिर मे पूर्णकालीन सेवक बने। 1976 मे उन्हें श्रील प्रभुपाद के प्रथम दर्शन हुए एवं उन्होंने महाराज एवं माताजी को अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार करते हुए आशीर्वाद दिया। अगले ही वर्ष उन्होंने श्रील प्रभुपाद से दीक्षा प्राप्त की ।

अमेरिका एवं कनाडा में एक सफल सिविल इंजिनियर के पद पर कार्यरत होते हुए भी वह कभी पश्चिमी सभ्यता से आकर्षित नहीं हुए। श्रील प्रभुपाद से प्रेरित होकर लेखक ने अपने इंजिनियर पद का त्याग कर इस्कोन के

पूर्ण उपासक बन गए। वह सुबह शाम प्रचार कार्यों एवं अन्य सेवाओं में व्यस्त रहने लगे। वह टोरंटो शिकागो एवं वैंकोवर मंदिर के सामूहिक प्रचार कार्यो के संचालक थे। 1987 में को इस्कॉन वैंकोवर मंदिर के अध्यक्ष बने। उन्होंने वैंकोवर एवं वेस्ट वर्जिनिया मे न्यू वृंदावन मंदिर के निर्माण मे भी सिविल इंजिनियर की भूमिका निभाई।

पश्चिमी देशों मे लम्बे समय तक प्रचार करने के उपरान्त, श्रीमान क्रतु दासजी महाराज 1983 में भारत लौट आये एवं गुजरात मे प्रचार करने लगे। अमेरिका से वापिस आने के बाद, वह बैल–गाड़ी से गाँव गाँव जाकर प्रचार करते एवं श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों का वितरण करते रहे। इसके उपरान्त उन्होंने भारत वर्ष के विभिन्न भागों में प्रचार कार्य किये। 1997 मे वह नई दिल्ली मे श्रीश्री राधा पार्थसारथी मंदिर के अध्यक्ष बने।

2002 मे वह इस्कोन के प्रामाणिक दीक्षा–गुरु बने एवं उनके प्रचार कार्य मे और वृद्धि होने लगी। वह कठिन परिस्थितियों मे भी विश्व के अनेक देशों मे जाकर कृष्ण भावनाभावित उपदेश देते रहे और श्रोताओं के जीवन को बदलते रहे। चौतन्य महाप्रभु के उपदेश अनुसार, उन्होंने स्वयं को सदा प्रचार कार्यो मे लगाए रखा। यद्यपि वह वृंदावन धाम मे रहने को सर्वोपरि मानते हैं, परन्तु अपने गुरुदेव श्रील प्रभूपाद की आज्ञा अनुसार वह विश्व भर मे श्री चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रचार कर रहे हैं। वह

संसार के जिस कोने में जाते हैं, उसी को वृन्दावन के समान बना देते हैं।

वह श्रील प्रभुपाद के बताये हुए सभी कार्यों में रत रहते हैं, जैसे पुस्तक वितरण, नाम संकीर्तन, भगवतगीता एवं श्रीमद्भागवतम् का व्याख्यान, वैष्णव सेवा, पंडाल उत्सव एवं रिट्रीट आदि सभी का उत्साहपूर्वक परिपालन करते हैं।

उनकी अन्य रचित पुस्तके हैं– "साधू संग" और "आनंद की ओर" । साधुसंग पुस्तक में वैष्णवों का महत्व दर्शाते हुए शास्त्रों द्वारा दिए गए साक्ष्य प्रमाण एवं उनके जीवन के अनुभवों का वर्णन है। आनंद की ओर पुस्तक में बताया गया है कि किस तरह भौतिक जगत में रहते हुए भी कृष्ण भक्ति में एक आनन्दमय जीवन बिताया जा सकता है ।

जय श्रील प्रभुपाद

श्री कृष्णकृपा मूर्ति ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद (1896–1977) व्यापक रूप से वैदिक शास्त्र के प्राथमिक ज्ञाता, अनुवादी एवं आधुनिक युग के गुरु माने जाते है। वह अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ के संस्थापक आचार्य भी है।

1 सितम्बर 1896, जन्माष्टमी के अगले दिन, टोल्लीगंज, कलकत्ता में अभयचरण डे का जन्म हुआ। चुकी उनके जन्मदिन पर नंदोत्सव मनाया जा रहा था, इसलिए उन्हें

नंदुलाल भी कहा जाने लगा। उनके पिता श्रीमान गौर मोहन डे एवं माताजी श्रीमती रजनी डे उच्च वैष्णव थे।

उन्होंने शिक्षा हैरिसन रोड के समीप स्कॉटिश चर्च कॉलेज, उत्तरी कलकत्ता से प्राप्त की। 1920 में उन्हें अंग्रेजी, अर्थशास्त्र एवं तत्वविज्ञान में स्नातक की उपाधि मिली। परन्तु गाँधी जी द्वारा शुरू किये गए स्वतंत्रता आन्दोलन के चलते उन्होंने उपाधि स्वीकार नहीं की।

1922 मे जब वह पहली बार अपने अध्यात्मिक गुरु श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर से मिले, तब उन्होंने श्रील प्रभूपाद को चौतन्य महाप्रभु के निर्देशों का अंग्रेजी मे प्रचार करने का आदेश दिया। 1932 मे वह भक्तिसिद्ध ांत सरस्वती ठाकुर के दीक्षित शिष्य बन गए। 1994 मे उन्होंने "बेक टू गॉडहेड" नामक पत्रिका का प्रकाशन किया, जिसके डिजाइनर, प्रकाशक, सम्पादक, अनुकृति संपादक एवं वितरक स्वयं वही थे।

1947 मे गौड़ीय वैष्णव संस्था ने उन्हें भक्ति वेदांत की उपाधि से स्वीकृत किया जिसका अर्थ था, "जिसने यह स्वीकार कर लिया है की इश्वर की भक्ति ही पूर्ण ज्ञान है"। आगे चलकर उनका परिचित नाम, प्रभुपाद, उनके शिष्यों द्वारा आदर दर्शाने के लिए 1967 से पूर्व 1968 मे प्रयुक्त रहा। इसके पूर्व, उनके शुरूआती शिष्य उन्हें स्वामी जी कह कर पुकारते थे।

1950 मे उन्होंने वृन्दावन के राधा दामोदर मंदिर को अपना स्थान बनाया एवं भगवद पुराण के संस्कृत से हिंदी अनुवाद लेखन को आरम्भ किया। वृन्दावन के सभी प्रसिद्ध मंदिरों मे राधा दामोदर मंदिर एक मात्र मंदिर है जहा शत्गोस्वामी एवं उनके अनुयायियों के लेखन, दो हजार से अधिक पांडुलिपियाँ एकत्रित है जो तीन सो से चार सो वर्ष पुरानी है। उनके गुरु भक्ति सिद्धांत सरस्वती ने उन्हें हमेशा यही प्रोत्साहन दिया था, "यदि कभी तुम्हारे पास धन हो, तो तुम उससे पुस्तके छापना"।

केशव जी गौड़ीय मठ वह स्थान था जहा भक्ति वेदांत रहते थे, उन्हें यहाँ के पुस्तकालय से गोड़ीय पत्रिका मगजीन को सम्पादित किआ था एवं श्री चौतन्य महाप्रभु की मूर्ति की स्थापना करी थी जो श्री राधा कृष्णा की मूर्तियों के समीप थी। सितम्बर 1959 मे उन्होंने अपने गुरु भाई भक्ति प्रजनं केशव से संन्यास स्वीकार किया।

संन्यास उपरांत उन्होंने भारत को छोड़, पाश्चात्य देशो में चैतन्य महाप्रभु का सन्देश पहुंचाने के लिए जलदूत जहाज मे प्रवेश कर अपने गुरु की आज्ञा का पालन करने का लक्ष्य किया। इस यात्रा में उनके पास एक सूटकेस, एक छतरी, सुखा आहार, भारतीय मुद्रा के अनुसार 8 डॉलर नकद एवं पुस्तकों के अनेक बक्से थे।

श्रील प्रभुपाद 1965 मे अमेरिका के लिए रवाना हुए थे। जुलाई 1966 मे भक्तिवेदांत स्वामी के द्वारा पश्चिम मे

"ग्लोबल मिशनरी वैष्णविस्म" की शुरुआत अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ की स्थापना के स्थ न्यूयॉर्क मे की और इसके बाद की कहानी स्वयं इतिहास बनी।

माया की मार पुस्तक में लेखक ने विस्तृत रूप से बताया है कि माया क्या है और इससे बचने का सबसे सहज उपाय क्या है।

इस पुस्तक में ऐसे अनेक तथ्य हैं जो हमें अपने जीवन की समस्याएँ सुलझाने में सहायता करेंगे। वर्तमान समय के भाग दौड़ भरे जीवन में किस तरह एक स्थिर चित्त, शांत और आनंदमयी जीवन बिताया जा सकता है, इसके विषय में लेखक ने सुन्दर प्रस्तुति की है।

श्रीमान क्रतु दास जी महाराज
श्रील प्रभुपाद जी के प्रिय शिष्य



इस पुस्तक में हमें इन प्रश्नों के सटीक उत्तर मिल सकते हैं:

- ✓ माया क्या है? माया का उग्र स्वरूप क्या है?
- ✓ माया जीव को क्यों और कैसे मारती है?
- ✓ माया से कैसे बचा जाए?
- ✓ गुरु की योग्यता और शिष्य की योग्यता क्या है?
- ✓ जीवात्मा माया में क्यों पड़ती है?